# कविता और काव्येतर कलाएँ

अशोक वाजपेयी जिस तरह से आधुनिक काल के एक जाने माने कवि कर्मयोगी है ठीक उसी तरह से कृष्ण बलदेव वैदजी के शब्दों मे कहे तो एक 'कलाविलासी, कलापारखी, रस नटरंग संगीत नृत्य साहित्य रसिया रसिक..... संयोजक प्रायोजक आयोजक.... प्रगतिशील कलावादी समालोचक भी हैं।' [1] जिसका मतलब है अशोक वाजपेयी सिर्फ कवि आलोचक नहीं है उसके साथ-साथ या कहें उसके समानान्तर वे एक मशहूर संस्कृतिकर्मी कलापारखी, कला मर्मज्ञ भी हैं। काव्य के अलवा काव्येतर लगभग जितने भी कलाएँ हैं वे सबका लिहाज करते हैं सबका सत्कार करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी सभी कलाओं को अपने घर में अर्थात कला के घर में जगह देते हैं। उन सबको जतन से पालते-पोसते है, इसके साथ ही वे हरदम सबका ख्याल भी करते हैं।

बहुलतावाद के प्रबल पक्षधर कवि अशोक वाजपेयी के लिए काव्य और काव्येतर कलाएँ एक दूसरे से एकदम से भिन्न नहीं है। बल्कि सबके-सब कलाएँ सहयोगी, सहभागी और सहचर कलाएँ हैं. आखिर है तो सबके सब कला ही। पश्चिमी विचारक लैंगर का भी मानना ह कि शिल्प और तकनीक के आधार पर कलाओं में भिन्नता होते हुए भी सभी कलाओं में साम्य है। सब कलाओं का एक ठोस जमीन होती हैं, जहाँ सभी कलाओं की तात्विक समानता दिखाइ देती है। क्योंकि मनुष्य की अनुभूतियों में विभाजन नहीं है। सभी कलाएँ अनुभूतियो की बहि: प्रकाश हैं। इस दृष्टि से या इन विचारों का प्रतिफलन कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में बार-बार देखा जा सकता हैं। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जो नृत्य कला से सम्बंधित है कविता का शीर्षक है 'प्रार्थना और चीख के बीच'। यह कवि अशोक वाजपेयी की एक अत्यन्त सुन्दर कविता है, इसमें कवि

नृत्य, संगीत और कविता को एक समतल भूमि पर लाने हुए फिर उनकी विशिष्टताओं के बारे में प्रकाश डालते है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'जहां तुम थीं**

**अपने नाचने शरीर से**

**अन्तरिक्ष को प्रेम जैसे**

**एक संक्षिप्त अनन्त में ढालते हुए**

**वहाँ क्या मैं रख सकता हुँ शब्द**

**उनका कोई संयोजन जो काव्य हो सके ?'** [2]

लैंगर को उद्धृत करते हुए ज्योतिष जोशीजी कहते हैं – 'पश्चिमी विचारक लैंगर ने भी कहा है कि शिल्प और तकनीक के आधार पर भेद होते हुए भी सभी कलाओं में साम्य है। अपनी पुस्तक 'कीलिंग एंड फार्म' में उसने यह स्पष्ट किया है कि सभी कलाओ में एक ऐसी ठोस जमीन होती है जो सबमें तात्विक समानता को सूचित करती है। मनुष्य की अनुभूतियों में विभाजन नहीं देखा जा सकता, भले ही उनकी अभिव्यक्ति के विविध माध्यम क्यों न हो।'' [3]

प्रयाग शुक्ल भी ऐसा ही कहते है कि हिन्दी में कलाओ के सह–संबंध के बारे में जो भी परम्परा रही है उस परम्परा को अशोक वाजपेयी ने आगे बढाते हुए यथेष्ट योगदान किया है और उसकी जरूरत को पहचाना है –– 'हिन्दी में विभिन्न कलाओं पर लिखने की जो भी परम्परा रही है, उस परम्परा में उन्होंने अपना योगदान किया है और उसकी जरूरत को भी पहचाना है।' [4] कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ जरुरत को पहचाना ही नहीं : हर सम्भव कारगर पहल भी किया है जो उनके दुशमनों और दोस्तों की भी प्रभावित करते है। ऐसा ही कहते हैं हशमत उनका कथन भी यहा उद्धृत किया जा हैं – 'साहित्य और कलाओं के सन्दर्भ में उनका चिन्तन और विवेक उसके दुश्मनों और दोस्तों, दोनों को प्रभावित करता है।' [5] कवि

आलोचक अशोक वाजपेयी विविध कलाओं के आपसी सम्बंध के तहत जो भी पहल करते है उनमें सबसे महत्वपूर्ण काम यह है कि वे दूसरों को भी उनमें शामिल करते हैं। वे अपने साथ भारतीय अन्यान्य कला चिन्तकों को उस परम्परा की ओर ले जाता है, जहा सभी कलाओं को अलग अलग मिडिया न मानकर एक ही हाइपर मीडिया मानते थे। वागीश शुक्ल भी ऐसा ही मानते हैं साथ ही उनका यह भी मानना है कि भारतीय कलाओं को एकत्र करने के लिए भारतीय बौद्धिक जन-समुदाय को एकाग्र होने के लिए मंच और परिवेश तैयार करना कवि अशोक वाजपेयी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काम रहा है। जिसका प्रमाण पूर्वग्रह और भारत भवन है। और यह सब हिन्दी साहित्य को एक दृष्टि प्रदान करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति चर्चा को भी सघन करते है -- 'साहित्य और अन्य कलाओं के परस्पर पर निरन्तर जोर देते रहने से और इस परस्पर का प्रक्षेप न केवल निजी लेखन और प्रवचन में, अपितु अपनी संयोजनात्मक गतिविधियों में भी करते रहने से अशोक वाजपेयी ने कलाओं को एकत्र पर बौद्धिक जन-समुदाय को एकाग्र होने के लिए मंच और परिवेश प्रस्तुत किया है। (कमलेश जैसी 'सिंगुलैरिटी' को छोड़ दे तो) हिन्दी के इधर के इतिहास में केवल वात्सायन जी की ही ऐसी सर्वास्पद कला-दृष्टि रही है किन्तु उसका बहुत कारगर प्रक्षेप हिन्दी साहित्य जगत् में नहीं हो सकता था और वह उनका व्यक्तिगत गुण अधिक रहाँ, उनकी सार्वजनिक छाप कम। अन्य कलाओं और उनके कलाकारों का पूर्वग्रह और भारत भवन में निरन्तर प्रस्तुतीकरण हिन्दी साहित्य दृष्टि के लिए तो समृद्धिकर रहा ही है, भारतीय संस्कृति-चर्चा को भी सघन करने में योग-कारक रहा है और एक कदम, भले ही सिर्फ एक कदम, आधुनिक कला-चिन्तक को भारत की उस प्राचीन रस दृष्टि की ओर भी ले जाता है जिसमें साहित्य, संगीत, नाट्य, अलग-अलग मीडिया न होकर एक ही हाइपर मीडिया होते थे।' [6] सचमुच कवि अशोक वाजपेयी भारतीय संस्कृति और कलाओं

पर जो कर्म किया है अपनी लेखनी के अलवा भारत–भवन एक ऐसा क्षेत्र रहा है। जिस पर ध्यान दिए बिना उनकी संस्कृति–कर्म तथा उनके कला मर्मज्ञ की असली छबि देखा नहीं जा सकता है। अपने अफसरी जीवन में उन्होंने संस्कृति–क्षेत्र को चूना और उसी के तहत सरकारी योजना से भारत–भवन निर्माण और वहाँ से भारतीय संस्कृति के हरेक क्षेत्र पर एंव भारतीय लगभग सभी कलाओं और कलाकारों पर जो काम उन्होंने किया है निश्चित रूप से काबिले तारीफ है। जिसका सम्पूर्ण लेखा–जुखा यहाँ सम्भव नहीं है। मकरंद परांजये इस प्रसंग अपने लेख में काफी प्रकाश डालते है, उसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। जो कवि अशोक वाजपेयी की कला–प्रेमी छबि को थोड़ा बहुत समझने में सहायक हो सकता है – 'साफतौर पर यहा कहा जा सकता है कि वे भारत के नम्बर एक संस्कृतिकर्मी हैं। अशोक जी के पहले तक ऐसे किसी स्थान की कल्पना तक किसी सरकारी अफसर के लिए अकल्पनीय थी। भारतीय प्रशासनिक सेवा के किसी भी अधिकारी ने, संगीत और संगीतकारों, नृत्य और नृत्यकर्मियों, रंगमंच और रंगकर्मियों आदि के लिए, शायद उतना नहीं किया, जितना अशोक जी ने। जितने कवियों, फिल्मकारों और रंगकर्मियों की उन्होंने मदद की, उन्हें प्रोत्साहित किया उनसे मिले, और जितने आयोजन उन्होंने किए उसका ठीक–ठीक लेखा–जोखा रख सकना अत्यन्त कठिन होगा। 'भारत–भवन' ऐसा अतुलनीय संस्थान है जैसा भारत में और कहीं है ही नहीं। यह वह संस्थान है जिसने भोपाल को भारत और विश्व के सांस्कृतिक नक्शो में स्थान दिला दिया। धरती पर ऐसा विरला स्थान, जहाँ राजनेता या नौकरशाह को नही, बल्कि कलाकार को वरीयता प्राप्त हो। एक ऐसी जगह जहाँ सृजन कर्मियों को, सम्मान–पुरस्कार आदर सत्कार प्राप्त होता है।' [7] लैगंर से भी पहले अरस्तु भी स्पष्ट कर चुके है कि काव्य तथा चित्र में साम्यता है। उन्होंने अपनी पुस्तक पोएटिक्स में इस बात को स्वीकारते है। अर्थात कलाओ में सह: सम्बंध की परम्परा

पश्चिम में पहले से ही है। पश्चिम के कई आलोचक/विचारक तो काव्य को वागात्मक चित्र तथा चित्रकला को मूक कविता मानते है। यह अलग बात है कि पश्चिमी तथा भारतीय साहित्य में कलायों के अन्त: सम्बंध को लेकर एक तरह से विवाद भी पहले से ही रहा है। कुछ विचारकों का मानना हैं कलाएँ अलग-अलग होते हुए भी मूलत: एक ही है। और कुछ विचारकों का मानना है सभी कलाएँ अपने आपमें अगल-अलग है।

काव्य और अन्य कलाओं में अन्त : सम्बंध का विचार या इस तरह की मान्यता हिन्दी साहित्य में सिर्फ कवि अशोक वाजजेपी को है ऐसी बात नहीं है। भारतीय जीवन में, भारतीय साहित्य में अनेक कलाओं के सह अस्तित्व का स्वीकार पहले से ही रहा है। अवश्य देखा यह जाता है कि इस विचार को, परंपरा को हम भूल सा गये थे। या तो हम उसे याद करने की कोशिश ही छोड़ दिए थे अथवा हम जान बुझकर उसमें दरारे पैदा की हैं। कुछ ऐसा ही मानता है कवि अशोक वाजपेयी को 'मुझे लगता है कि आधुनिकता के प्रोजेक्ट में हिन्दी में उत्तर भारत में, शुरू से यह खोट थी कि उसने साहित्य और कलाओं के बीच दरार पैदा की और फैला दी। उन्नसवीं शताब्दी तक कविता, संगीत, नृत्य, ललित कलाएँ, रंगमंच आदि सब परस्पर सहकार में, संवाद में एक दूसरे के अनिवार्यत: पड़ोस में थे। उनकी एक बिरादरी थी। उनकी बिम्बों, अभिप्रायों प्रतीकों आदि में साँझा था। मुझे लगा कि इस विरादरी को फिर एकजुट करना बहुत रचनात्मक हो सकता है। कुछ मैंने इसकी कोशिश की।' [8] सचमुच यह एक विडम्बना ही है भारत में काव्य तथा काव्येतर कलाओं क सह: अस्तित्व की एक सुदीर्घ और अखंडित परम्परा होने के बावजूद हिन्दी में इसकी आन्तरिक और अन्तहीन दुनिया को गहराई से टटोला नहीं गया है। कवि अशोक वाजपेयी इस अस्पृश्य-सा विषय पर अपना ध्यानाकर्षन करते हैं। काव्य और काव्येतर कलाओं की एक व्यापक परिवेश में देखने-समझने की

कोशिश करते हैं। इस दृष्टि से मिसाल के तौर पर कवि अशोक वाजपेयी की चित्रकला के सम्बंधित एक सारगर्भित और सुन्दर कविता 'रजा का समय' शीर्षक में से कुछ पक्तियाँ उदाहरण के रूप में देखा जा सकता हैं। यह एक लम्बी कविता है इस कविता में रजा के जीवन और उनके जीवन–दर्शन की विचार विश्लेषण करते हुए रंग और चित्र का शब्द और कविता से उनका जो स्थूल और सूक्ष्म सम्बंध रहा है उसे रेखांकित करते है। फिर चित्रकला की बारीकियों से भी परिचित कराते है –

**'जंगल की एक पगड़ण्डी पर**
**पत्थरो–पटी सड़क के किनारे**
**दूर किसी ऊँसी इमारत की खिड़की से**
**कविता की किसी अधभूली पंक्ति में**
**आकारों के क्षुब्ध सुनसान में**
**बच्चों की तरह खिलखिलाते है रंग**
**धीरे–धीरे बदल जाते ह आँसुओं में, ओस में,**
**कामना के उत्तप्त जल में :**
**समय पर एक लकीर खिंच जाती है**
**आग की तरह जलती–जगमगाती हुई।'** [9]

अशोक वाजपेयी यह दिखाने की समझाने की कोशिश करते हैं कि आखिर कलामर्म अन्ततः एक ही है भले ही अभिव्यक्ति और अभिव्यजना की दृष्टि से उसमें विविधता क्यों न दिखाई देते हो। मूलतः सभी कलाओं के उत्स एक ही बाकी उनके उत्पादन, तौर–तरीके, व्याकरण और अनुशासन अलग–अलग है। विजय वर्मा का कथन इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं– 'मूल बात यह है कि उनका उत्स एक ही ह बाकी उनके उत्पादन अलग है, तौर तरीके अलग है, व्याकरण और अनुप्रास अलग हैं, श्रेष्ठता के मानक और पहचान प्रसंग अलग हैं।' [10]

कवि अशोक वाजपेयी इस पौराणिक सत्य और तथ्य पर जो एक तरह से पर्दा परे हुए थे उसे हटा देते हैं। सिर्फ पदे हटाकर वे शांत नहीं हो जाते हैं। बल्कि सुनियोजित ढंग से विभिन्न कलाओं के बीच आवाजाही कायम करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी शिददत के साथ यह प्रमाणित करके भी दिखाते हैं कि सही मायने में भारतीय साहित्य-संस्कृति अर्थात भारतीय कला का परिष्कार-परिवर्धन औंर इसकी प्रयोजनीयता अगर हासिल करना है तो इन सब में सह-सम्बंध की जरूरत है ही। इसका पुरव्ता प्रमाण इनकी कविताएँ, आलोचना और आयोजन सभी में स्पष्ट देखा जा सकता है। विविध कला का संस्कार कवि अशोक वाजपेयी में पहले से ही था। विशेषत: संगीत के प्रति लगाव और प्यार उनको बहुत पहले से ही था। वे कहते है - 'मैं खुद ही लता मंगेशकर का बहुत बड़ा फैन था। मेरी आवाज स्मृति बड़ी तीव्र और प्रामाणिक है। मैं एक बार किसी की आवाज सुनकर बाद में बता सकता हूँ कि यह उसकी आवाज है। उन्हीं दिनों मैंने आचार्यजी की के कारण कृष्णाराव शंकर को सुना। तब मुझे समझ में आया कि आदमी की आवाज क्या होती है ? डेड़ घण्टे तक गाए जा रहा है तो तीन-साढ़े तीन मिनट की लता मंगेशकर क्या है उनके सामने। तो इस तरह के कुछ बुनियादी विचार उन्हीं दिनों पड़े।' [11] इसका जीता-जागता प्रमाण उनका पहला काव्य-संग्रह 'शहर अव भी संभावना हैं' में देखा जा सकता है। जो सन 1966 में प्रकाशित हुई है और जिसकी अधिकतर कविताएँ सागर में ही लिखी गई हैं। इस संग्रह में अली अकबर खाँ के सरोद वादन पर कविता है, मकबूल फिदा हुसैन के चित्र को देखते हुए कविता है, और खजुराहों पर भी कविता है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत संग्रह में से 'अली अकबर खाँ का ससेद वादन : 1 और 2 शीर्षक कविता से कुछ पक्तियाँ -

**'खिड़की से एक पीला गुलाब रह-रहकर टकराता रहा**
**वही वह झुकी खड़ी रोती रही**

**मैं सुनता रहा .....**

**कोई अपनी उँगलियों से**

**काँपता-काला आकाश**

**मेरी ओर खींचता रहा**

**खींचता रहा .....** [12]

**फिर - 'सीढ़ियों पर सहमकर रह गया**

**एक हाथ**

**उँगलियों से फूट-फूटकर बहत रहा**

**उजाले का एक नरम बहाव -**

**सहमकर रह गया एक हाथ!'** [13]

अपने पहला काव्य संग्रह की इन बातों को याद करते हुए कवि स्वंय कहते हैं - 'मेरा पहला कविता-संग्रह 1966 मे आया था। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ सागर में रहकर लिखी गई हैं। उसमें अली अकबर खाँ के सरोद-वादन पर कविता है, मकबूल फिदा हुसैन के चित्र को देखते हुए कविता है, खजुराहों पर कविता है। मुझमें कला के संस्कार पहले से तो थे ही। सेंट-स्टीफेंस में दुनिया एक दूसरे अर्थ में बड़ी हुई। दो साल मैं वहाँ पढ़ा और तीन साल मैंने दयाल सिंह कॉलेज में पढ़ाया। इन पाँच सालों में मैंने कलाओं में अपने को दीक्षित करना शुरू कर दिया। एक अपना ही विश्वविद्यालय चलाया जिसका एकमात्र छात्र मैं ही था। उन दिनों यहा कोई ऐसा कला-आयोजन न था जिसमें मैं न गया होऊँ। दो ही शौक थे- किताबे खरीदने का और कला-आयोजनों में जाने का। 1960 से 1965 तक के कला-जगत में मेरी उपस्थिति अनिवार्य रही, बिलकुल फर्नीचर की तरह।' [14] इस तरह से सभी कलाओं को पड़ोस के रूप मे देखने का स्वप्न कवि अशोक वाजपेयी सागर में हीं देखना शुरू करते हैं। रमेश दत्त दुबे भी यही कहते हैं- 'सारे कला रुपों

का एक ऐसा पड़ोस जिसकी एक दीवाल दूसरे से मिलती है, जो एक दुसरे के सुख दख में शरीक होते हैं, जो मसिहा के अनुसार एक दूसरे को आत्मवत प्यार करते हैं और यह भी कि सबमें एक ही आत्मा है, का अनन्त स्वप्न अशोक ने सागर में ही देखना शुरू कर दिया था।' [15] तात्पर्य पूर्ण घटना है कि कवि अशोक वाजपेयी आइ.ए.एस, में उत्तीर्ण होकर भी अपनी नौकरी में अपना कार्यक्षेत्र संस्कृति–संवर्द्धन को बनाया। पैंतीस वर्षो तक इसी क्षेत्र में उन्होंने काम किया। यह सबको मालूम इस हँार में उन्होंने भारत–भवन में रहते हुए क्या नहीं किया? इससे उनकी कलाओं प्रति आस्था–प्रेम की गहराई का पता आसानी से लगाया जा सकता हैं।

कविता संगीत या अन्य कलाएँ एक ही समाज और संस्कृति में जन्म लेते है, बढ़ते है तो उसमें कहीं न कहीं कुछ न कुछ सम्बंध भला क्यों नहीं होंगे। अवश्य होंगे। मगर उन सबकी अपनी–अपनी स्वायत्तता भी ह जो बरकरार भी रहेंगे। इस सम्बंध में कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं– 'कविता और संगीत एक ही समाज और संस्कृति में जन्म लेते, बढ़ते है तो सहोदर होने के कारण उनमें अभिप्रायों, दबावों और तनावों आदि की समानता होगी। लेकिन उनकी अपनी–अपनी स्तायत्तता भी है। विविध कलाओं के बीच कहीं न कहीं समानता तो है लेकिन कवि अशोक वाजपेयी यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस समानता के परे भी काव्य तथा अन्य कलाओं के अपनी–अपनी पहचान अथवा स्वायत्तता बचा रहता है।' [16] कवि अशोक वाजपेयी इस बात पर भी जोर देते हैं कि काव्य या साहित्य के साथ – साथ कलाओं का भी अपना–अपना जीता–जागता समाज है जिसे लेखक–पाठकों को पहचानना– जानना चाहिए। कवि अशोक वाजपेयी इस विषय पर जो कहते है उद्धृत किया जा रहा हैं — 'हमने इस बात पर भी बल दिया है कि व्यापक समाज के अलवा साहित्य का अपना औंर कलाओं का भी एक जीता–जागता समाज है जिसे लेखकों–पाठकों को पहचानना – जानना चाहिए।' [17] अत: स्पष्ट है कि काव्य तथा

काव्येतर कलाएँ आपस में सहोदर है, बिरादर है। कवि अशोक वाजपेयी इस बात की गहराई को अनुधावन करते हुए काव्य और अन्य कलाओं के सहोदरी–बिरादरी जो इतने दिनों से लगभग अनदेखा किया जा रहा था उसे स्पष्ट और व्यक्त करना चाहते है। विविध कलाओं को कवि अशोक वाजपेयी काव्य तथा साहित्य का अनिवार्य पड़ोस के रूप में मानते हैं। उनकी कविताएँ इसका साक्षा है। आखिर काव्य और सभी कलाएँ एक ही समाज और संस्कृति में जन्म लेते हैं। तो काव्य के साथ–साथ जितनी भी कलाए हैं अपने आपमें स्वतन्त्र होते हुए भी एक–दूसरे से साँझे का संबंध रखे हूए है। कवि अशोक वाजपेयी का यहाँ तक मानना हैं कि हरेक कलाएँ अपने आप में महत्वपूर्ण हैं कोई किसी से कम नहीं है। सच्चाई सिर्फ शब्दों में ही है यह बात नहीं है शब्दों के अलवा शब्दों के जैसा ही सुरों या रेखाओं या मुदाओं में भी हैं। अत: संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि सभी से कविता की विरादरी है और वह सब कविता के पड़ोसी हैं। इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति निम्न कथन में देखा जा सकता हैं — 'कवि अशोक वाजपेयी की भाषा मे कहें तो – 'जितना सच ऊपर नान के मकान के छत से दीखता दृश्य था उतने ही सच थी पुस्तकों के पृष्ठा पर मुद्रित शब्दों की संरचनाएँ भी। शब्द उतने ही सच थे जितने फूल, पत्तियाँ, चिड़ियाँ या पत्थर–आँखें, हाथ या स्पर्श। शब्दों की इस सच्चाई के अहसास ने कई बार निपट एकान्त में भी सच्चाई से कभी दूर नहीं रहने दिया। इस अहसास क समानान्तर यह अहसास भी सक्रिय रहा है कि सच्चाई शब्दों के अलवा सुरों या रेखाओं या मुद्राओं में भी उतना ही रसती–बसती है। मैं बराबर यह मानता रहा हूँ कि कविता की संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि से एक अटूट बिरादरी है और वे सब भी कविता का कम– से कम मेरी कविता का, अनिवार्य पड़ोस है।' [18]

जैसा कि सच्चाई शब्दों के अलावा अन्य कलाओं में भी है कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता है 'खजुराहों जाने से पहले' शीर्षक से प्रस्तुत कविता में कवि मूर्ति कला में सच्चाई की तलाश करते हैं –

**'पत्थर सिर्फ पत्थर लोग नहीं चेहरे होंगे**

**चेहरे सिर्फ चेहरे नहीं लोग होंगे**

**लोग सिर्फ लोग नहीं पत्थर होंगे**

**मैं कौन-सी आवाजे ढूँढूँगा**

**पत्थर की उन आकृतियों में**

**जो चुप रहेंगी कविताओं की तरह ?'** [19]

कवि अशोक वाजपेयी की कविता संग्रह 'तत्पुरूष' में भी एक कविता है मूर्ति कला पर जिसका शीर्षक है —

'खजुराहों में रात' वहाँ कवि पत्थर या मूर्ति मे प्राणों का संचार करते हुए यह दिकाते है कि वह चुप होते हूए भी होना न होना सब देख रहा है –

**'पत्थर**

**दिव्य और विजड़ित**

**निष्पलक देखते हैं**

**होना, न होना!'** [20]

ऐसे ही विचारों और भावनाओं का सूक्ष्म विस्तार उनकी एक और कविता 'प्रतीक्षा करते है पत्थर' में भी देखा जा सकता हैं। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं –

**'बिना माथा झुकाए प्रार्थना करते हैं पत्थर,**

**बिना पसीजे कामना करते हैं पत्थर,**

**बिना शब्द कविता लिखते हैं पत्थर।**

**पता नहीं किसकी प्रतीक्षा करते हैं पत्थर!'** [21]

किन्तु हिन्दी में या हिन्दी साहित्य में एक पूर्वग्रह बना हुआ है कि साहित्य या काव्य बाकी अन्य कलाओं से अधिक महत्वपूर्ण है। कवि या लेखक अन्य कलाकारों से ज्यादा इज्जत और सम्मान के हकदार हैं आदि। समकालीन परिदृश्य में इस तरह की भावनाओं या मान्यताओं का बर्चस्व रहा है। इन सबको निरस्त करते हुए कवि अशोक वाजपेयी स्थापित करना चाहते है कि कुमार गंधर्व, हबीब तनवीर या सैयद हैदर रजा का संघर्ष या आत्म संघर्ष कहीं भी अज्ञेय या मुक्तिबोध के संघर्ष से कम नहीं है। उनका कहना हैं– 'हिन्दी मन में कलाओं की साहित्य से कमतर मानने का एक स्थायी, हालाँकि पूरी तरह से अतर्कित पूर्वग्रह ह जिसे तथा कथित सामाजिकता की चालू अवधारणाओं ने दुभाग्र्य से पुष्ट ही किया है। लेखकों में साहित्य के संघर्ष या आत्मसंघर्ष को कलाकारों के संघर्ष या आत्मसंघर्ष के मुकाबले अतिरंजित करने की आदत है: मैं इस पर इसरार करता रहा हूँ कि अज्ञेय या मुक्तिबोध के संघर्ष से कुमार गन्धर्व या हबीब तनवीर या सैयद हैदर रजा या जगदीश स्वामीनाथन का संघर्ष किसी कदर कम नहीं है, न ही सर्जनात्मकता के क्षेत्र में कम मूल्यवान। मेरी कोशिश साहित्य और कलाओं के बीच जो बिरादरी अविवक्षित सी बनो रही है उसे स्पष्ट और विन्यस्त्र करने की रही हैं।' [22] कवि अशोक वाजपेयी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से अवगत है वे जानते हैं भारत वर्ष में सदियों से शास्त्रीय संगीत, नृत्य, रंगमंच, ललित कला और वास्तुकला का अनेक घराने शौलियाँ थे। मगर आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य, हिन्दी आलोचना उन सबकी ओर से विमुख रहा है। हिन्दी साहित्य, हिन्दी आलोचना सिर्फ हिन्दी तक ही एकाग्र रहा है। अन्य कलाओं के बारीकियों सूक्ष्मताओं और चिन्ताओं से लगभग बेखबर रहा है। कवि अशोक वाजपेयी इस प्रसंग में जो कहते हैं उसे उद्धृत किया जा रहा हैं– 'हिन्दी अंचल का सांस्कृतिक क्षरण भारत में इस समय सबसे तेज है: शास्त्रीय संगीत, नृत्य, रंगमंच, ललित और वास्तुकलाओं आदि में हिन्दी अंचल

बेहद विपन्न हो गया है। हमने होने दिया है जबकि अनेक घराने, शैलियाँ आदि सदियों से, इस अंचल में जन्मे और पले-पुसे थे। हिन्दी आलोचना दयनीय रूप से साहित्य पर एकाग्र है, उसमें अन्य कलाओं की जटिलता-सूक्ष्मता, सरोकारों और चिन्ताओं का अवबोध नहीं के बराबर है।' [23]

कवि आलोचक अशोक वाजपेयी काव्य के अलवा अन्यान्य कलाओं के भी अच्छे जानकर हैं। एक आलोचक के रूप में भी वे काव्य के साथ-साथ अन्यान्य कलाओं के सूक्षताओं बारिकीयों और समस्याओं के बारे में आलोचना करते है। उनसे लिए गये विभिन्न साझात्कार में कई बार वे अनकलाओं के तात्विक बातों पर रोशनी डालते हैं। फिर इन सबसे अलग काव्य और अन्यान्य कलाओं पर उनकी एक अलग से आलोचना पुस्तकें है जिसका शीर्षक है 'समय से बाहर'। यह उनके द्वारा एक अनुपम और महत्वपूर्ण कार्य है। इतना सारा एक साथ ! हिन्दी साहित्य में दुर्लभ। हिन्दी साहित्य काफी मायने रखता है यह पुस्तक। यहाँ निर्मल वर्मा का कथन उद्धृत किया जा रहा है जो इस पुस्तक की भूमिका में वे करते हैं - 'हिन्दी की यह अपनी तरह की पहली और अभूतपूर्व पुस्तक है। हिन्दी में और सम्भवत: भारतीय भाषाओं में, पहलीबार एक साहित्यकार ने अपने समय की कलाओं से आलोचना और रचना दोनों स्तरों पर उलझने और उन्हें अपनी विशिष्टता में समझने की कोशिश की है।' [24]

कवि अशोक वाजपेयी विविध कलाओं के सह-सम्बंन्ध के बारे में काफी चिन्तित हैं, और हर सम्भव पहल भी करते हैं। वे अपने समय की कविता और कलाओं को अपने समय और समाज में धूप की जगह दिलाने की चेष्टा करते हैं। काव्य के अलवा अन्य कलाओं से भी उनका सम्बंध बहुत गहरा और तलस्पर्शी सम्बंध रहा है। और वह सम्बंध बहुत पुराणा बहुत लम्बा और अनेक स्तरों का हैं। यहाँ वास्तुकला का एक उदाहरण लिया जा सकता है जो कवि अशोक वाजपेयी का

अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह 'समय के पास समय' से है कविता का शीर्षक है 'कुम्हार' प्रस्तुत कविता में कवि अत्यन्त संवेदनशीला के साथ कुम्हार के कर्म और उसके जीवन के मार्मिक पहलुओं पर दृष्टि डालते है। एक कुम्हार के जीवन के माध्यम से कवि जीवन और समय पर आधारित कई जटिल और समसामयिक प्रश्नों को उत्थापन करते हैं। वे समय पर रहते हुए फिर समय के पार निकल जाते हैं। कुछ पंक्तियाँ --

**'मैं तो अपने चके पर मिट्‌टी चढ़ाता हूँ**
**और अपनी उँगलियों से उसे गुददुदाता हूँ**
**और कोई रूप गढ़ता हूँ।**
**मेरे हाथ मेरे सपने मेरी बेचैनी,**
**मेरी रोजी, मेरा चढ़ता-उतरता दिन,**
**मुझे रोटी के लिए पुकारता बच्चा,**
**मुझसे मोलतोल करते हुए झगड़ता गाहक,**
**ऊपर फैला हुआ आकाश,**
**मेरे आँगन में पड़ती धूप सब मिलकर**
**मिट्‌टी को चके पर रचते और गढ़ते हैं**
**लेकिन किसी कीचड़ धँसे चके को हुमसाना मेरा काम नहीं।'** [25]

इसी धारा में कवि अशोक वाजपेयी बढ़ई को भी अपनी कविता में स्थान देते है। सिर्फ स्थान देते है यह नहीं है कवि साधारणत: हाशिए पर रहनेवाले/कलाकार को सम्मान प्रदान करने के साथ-साथ यह भी दिखाते है कि एक साधारण बढ़ई अपने काम करते हुए भी दुनियादोरी के बारे में किस तरह चिन्तित-परेशान है। स्वंय से ही कोई महत्वपूर्ण सवाल वे करते हैं जो दरअसल स्वंय तक सीमित नहीं रहता

है वह सवाल मूलतः आज के समाज के महत्वपूर्ण सवाल है जिसका जवाब की तालाश करते हैं। 'बढ़ई' शीर्षक से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'मैं सिर्फ अपना रंदा नहीं चलता**
**या ठोंक-पीट ही नहीं करता रहता हूँ,**
**में अपना काम करते हुए सोचता भी हूँ**
**और कभी-कभी जब लकड़े के छल्ले छिल-छिलकर**
**जमीन पर गिरते हैं**
**तो मैं उनमें उलझे हुए**
**कुछ सपने भी देखता हूँ।**
**अभी परसों ही मुझे रंदा चलाते हुए खयाल आया कि**
**लोगों के बीच जो मनमुटाव है**
**उसे रंदे से छीलकर फेंका नहीं जा सकता है ?'** [26]

कवि के अनुसार सभी कलाएँ निष्कम्प दीप शिखाएँ जैसी है कला ही जीवन को सार्थक बनाता है। कवि अशोक वाजपेयी इस बारे में कहते है- 'कलाओं से मेरा निजी सम्बंध बहुत लम्बा और अनेक स्वरों पर रहा है। मित्रता, सहचारिता, संवाद-विवाद, समझ-आस्वाद, आयोजन आदि का सम्बन्ध। वह सिर्फ निरी कविता के धरातल पर सम्बन्ध नहीं हैं। मैं ढेरों श्रष्ठ कलाकारों को निकट से लम्बे अरसे से जानता रहा हूँ। कलाओं और कलाकारों के प्रति मेरे मन में गहरी और अटूट कृतज्ञता है। अपने अंधेरे समय में मुझे वे हमेशा निष्कम्प दीपशिखाएँ लगती रही हैं। वे न होती तो कमसे-कम मेरा जीवन अकारथ हो चला जाता। कलाओं ने ही हमारे समय में वह दूसरा विमर्श जीवित-सक्रिय रखा है जो प्रतिबिम्बन का विमर्श नहीं हैं।' [27]

कवि अशोक वाजपेयी के लिए काव्य या साहित्य काजितना महत्व या मूल्य है उतना ही कलाओं का भी। और ऐसा सोचने वाला हिन्दी ही नहीं देशभर में जो भी दो-तीन बंदा है उनमें वे प्रमुख हैं। 'मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी' की भूमिका में भी ऐसा ही कहा गया है- 'अशोक वाजपेयी हिन्दी ही नहीं देश के दो-तीन ऐसे आलोचकों-भावकों में हैं जिनके लिए कलाओं का भी उतना ही मूल्य है जितना कि साहित्य का।' [28] काव्य तथा अन्य सभी कलाएँ जीवन के लिए है, जीवन की बेहतरी और सर्वोच्चता हासिल करने के लिए है, जैसी बातों से कवि पूर्णत: सहमत है। और उनके लिए साहित्य और कलाएँ मनुष्य का एकमात्र स्थायी प्रजातन्त्र है जहाँ दष्टियों की बहुलता ही अस्तित्व का मूलाधार है। कवि अशोक वाजपेयी का यह जो बहुलतावादी मन्त्र है उनके लिए तथा हिन्दी साहित्य में काफी मायने रखता है। और इसी के तहत वे काव्य के साथ- साथ विविध कलाओं और कलाकारों को अपने कला के घर म जगह देते है, पालते-पोसते है। यहाँ कवि अशोक वाजपेयी की संगीत प्रियता तथा एक संगीतकार के प्रति उनकी गहरी आस्था और भक्ति का उदाहरण दिया जा सकता है। उनकी कविता जिसका शीर्षक है 'मल्लिकार्जुन मंसुर' इस कविता में कवि का एक संगीतकार के लिए श्रद्धा-भक्ति किस कदर है स्पष्ट महसूस किया जा सकता है। फिर बहुत ही सुन्दर ढंग से संगीत की बारीकियों और सूक्ष्म जानकारि यों की सहज-सरल भाषा में अभिव्यक्ति भी प्रस्तुत कविता में देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

**'ईश्वर आ रहा होता**
**घूमने इसी रास्ते**
**तो पहचान न पाता कि वह स्वंय है**
**या कि मल्लिकार्ज्जून मंसूर**
**ज्ञो कुछ बहुत प्राचीन हममें जागता है**

**गूँजता है ऐसे जैसै कि**

**सब-कुछ सुरों से ही उपजता है**

**सुरों में ही निमजता है**

**सुरों में ही निवसता और मरता है।'** [29]

फिर यहाँ तक शांत न रहकर एक हाथियारवन्द ईमानदार सिपाही की तरह वे उन सबका चौकसी भी करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपने समय के सभी सार्थक कृतियों और कलाकारों के हित-चिन्तन करते हैं। सभी को बचाने की कोशिश करते हैं, उसमें कौन कहा से है, किस विचारधारा से है इन सबसे उनका लेना-देना नहीं है। कवि अशोक वाजपेयी स्पष्ट भाषा में कहे हैं- 'अपने समय की सार्थक कृतियों और सार्थक कलाकारों को, भले ही उनसे आपकी कितनो ही वैचारिक असहमति क्यों न हो, बचाने के लिए सब कुछ करना एकमात्र कर्तव्य हैं।' [30] इतना ही काफी नहीं है कवि अशोक वाजपेयी के लिए, वे लेखक और कलाकार को समाज में योग्य स्थान दिलाना और उनके मौलिक अधिकार की रक्षा करना जीवन संघर्ष समझते है। वे कहते हैं- 'लेखक और कलाकार को समाज में उसका योग्य स्थान मिले और उसके मौलिक अधिकार की रक्षा हो, एक तरह से इसे आप मेरा जीवन संघर्ष कह सकते हैं।' [31] फिर कवि अशोक वाजपेयी अपने जमाने से कहते हैं कि साहित्य और कलाएँ महत्वपूर्ण हैं और लेखक-कलाकारों को कहते हैं कि समाज में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका है। कुलमिलाकर एक सर्वग्रासी सर्वव्यापी अपसंस्कृति के विरुद्ध कवि अशोक वाजपेयी सच्ची संस्कृति के लिए समाज में जगह बचाये रखने के लिए एक छापामार लडाई लड़ते हैं और लड़ते जा रहे हैं। इन सबका जीता-जागता और ज्वलन्त प्रमाण उनकी कृतियों, आलोचनाओं, आयोजनों और सम्पादन में स्पष्ट देखा जा सकता हैं। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं मे लुहार का भी ख्याल रखते है। 'लुहार' शीर्षक कविता में कवि एक लुहार की

धंधई लाचारी के गम्भीर पक्ष पर दृष्टिपात करते हैं जो आमतौर पर देखा सोया नहीं जाता है --

**'मेरी भट्ठी वह जगह है**

**जहाँ से लोहा आदमी को पुकारता है**

**पर अब वह जगह कहाँ है**

**जहाँ आदमी लोहे को पुकारता ह ?**

**धातुओं को पुकारना आदमी ने बंद कर दिया है**

**लोहे की क्या बिसात अब तो**

**लगता है कोई**

**धरती, आकाश, आग, हवा, पानी को ही कहाँ पुकारता है ?'** [32]

जाहिर है कवि अशोक वाजपेयी की काव्य तथा काव्येतर कला सम्बंधी कविता, लेखों, आलोचना आयोजनों से होकर गुजरना एक सुखद अनुभव, फिर भारतीय संस्कृति से परिचित और मुखातिब होने के लिए तथा हर एक संस्कृति प्रेमी पाठक के लिए दृष्टि संवधर्क, स्फूर्तिदायक और विचारोत्तेजक अनुभव भी। प्रयाग शुक्ल का भी ऐसा ही मानना हैं - 'सिर्फ हिन्दी ही नहीं भारत के विभिन्न भाषाओं की कृतियों को विचार-विमर्शको और भारतीय कलाओं को तथा कलाकारों को निकट लाने एवं समन्वय स्थापित करने के लिए बहुत सारा काम कवि अशोक वाजपेयी करते हैं जो निश्चित रूप से सराहनीय है। और उनके लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धियाँ भी- 'अशोक ने भारतीय भाषाओं के रचना-जगत, विचार जगत को, और भारतीय कलाओं को, कलाकारों को, एक-दूसरे के निकट लाने के बहुतेरे काम किए हैं, जो निश्चय ही उनकी उपलब्धियाँ हैं।' [33] सौ-प्रतिशत सच कहते हैं प्रयाग शुक्लजी कवि अशोक वाजपेयी अपने लम्बे साहित्यिक- सांस्कृतिक जीवन में कहीं भी, कभी भी अपने को लेकर व्यस्त नहीं रहते हैं, अपने तक सीमित नहीं

रहते हैं, हर-हमेशा हर-एक क्षेत्र में दूसरों के बारे में सोचते हुए कुछ करते हुए दिखाई देते हैं। मूलत : एक कवि होने के नाते उन्होंने अपनी कविताओं में विषय के साथ-साथ संवेदनात्मक स्तर पर भी अन्यान्य कलाओं को, कलाकारों को अपनाते-बखानते हैं। फिर जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है काव्य तथा काव्येतर कलाएँ आपस में सहोदर होते हुए भी सभी कलाओं के अपनी-अपनी स्वायत्वता हैं अपनी अपनी समस्याए हैं, इन बातों का ख्याल भी कवि अशोक वाजपेयी करते-रखते हैं। और प्रत्येक कला की अपनी -अपनी स्वरूप एवं प्रकृति के अनुसार उन सबके लिए वे अलग-अलग संस्थान, मंच, पत्रिकाए, गोष्ठी आदि का आयोजन करते हैं। उस हद तक करते हैं जबकि कुछ नकचढ़े, ईर्षालू और कमपढ़ आलोचक, कवि-लेखक उन्हें कलावादी का ढप्पा लगा देते हैं। कवि अशोक वाजपेयी बहुत सुन्दर और तर्कपूर्ण तरीके से इन गलत आरोपों का जवाब देते हैं वे कहते है कि हमें सामन्ती मानसिकता को बदलना चाहिए। साहित्य के अलवा अन्य कलाएँ शुद्र नहीं उनका भी उतना ही महत्व है जितना कि साहित्य का। और इस सत्य को, यथार्थ को नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। जीवन की अभिव्यक्ति साहित्य में जिस तरह से है वैसा ही अन्य कलाओं में भी। कवि अशोक वाजपेयी इसे स्वीकारते और मानते हैं और अपनी लेखनी के साथ-साथ प्रायोगिक रूप से भी इसका प्रतिपालन करते हैं। इस बारे में कवि जो कहते है उसको उद्धृत किया जा रहा हैं -- 'हमें कलावादी तो शायद सिर्फ इसलिए कहा जा रहा है कि हम साहित्य के साथ-साथ अन्य कलाओं पर भी आग्रह कर रहे हैं। हिन्दी के बहुत से लेखको की सामन्ती मानसिकता साहित्य को विप्र मानती है, अन्य कलाओ को शुद्र। अपने अज्ञान में वे शास्त्रीय संगीत, नृत्य या ललित कलाओं को हिकारत से देखते हैं। यह कहना अनावश्यक है कि संस्कृति में यह वर्णवाद न तो वैज्ञानिक है, न ही प्रजातान्त्रिक। संस्कृत को साहित्य केन्द्रिक मानना अतिचार तो है ही, उस

यथार्थ को नजर अन्दाज करना भी है जिसकी दुहाइ ये लोग देते हैं। जीवन पर साहित्य का एकाधिकार है यह माना ही नहीं जा सकता। न ही यह कि साहित्य में जीवन अधिक है, कलाओं में कम। ऐसे अबोध हिसाब-किताब का हमारा जीवन ही प्रत्याख्यान है।' [34] लेकिन मस्त मौला, हँसमूख चिरयुवा कवि अशोक वाजपेयी हँसते-हँसते, हले-हले नहीं खलबली मचाते हुए उन सबके सर आखों में कीचड़ झोकते हुए अपनी युवागति से उन सबको पीछे छोड़ते हुए आगे निकल जाते हैं। इस सन्दर्भ यहाँ अखिलेश का कथन द्रष्टव्य हैं- 'अन्य कलाओं के प्रति गहरा विश्वास उनकी साहित्य को समर्पित आस्था का ही विस्तार है। वे भरोसे करते हैं भाषा पर और भरोसे की भाषा बोलते हैं। यह दुर्लभ गुण उनके समकालीनों में है, न ही वाद की पीढ़ी के कवियों में। अशोकजी का अन्य कलाओं के प्रति यह अनुराग उन्हें ऐसी-ही किसी दुविधा में भी डाल देता होगा, जिसमें से निकलना भी उन्हीं के बूते की बात है।' [35] अवश्य यहाँ इतना तो सच्चाई है ही कि इस तरह की आरोपों-प्रत्यारोपों या निन्दा-स्तुतियों के कारण उनकी जो भारतीय संस्कृति तथा विविध कलाओं की पारस्पारिक सहयोगिता पर कर्म वह कुछ हदतक कुहरे में रहा है। इस प्रसंग में मदन सोनीजी का कथन समीचीन है जिसे उद्धृत किया जा सकता है - 'आरोपो- प्रत्यारोपों या निन्दा-स्तुतियों (ज्यादातर निन्दाओं) की धुन्ध में उनके संस्कृति-कर्म का बिम्ब प्राय: धुँधला बना रहा। किसी सार्थक विश्लेषण के अभाव में वह बहुत स्पष्ट कभी नहीं हो पाया।' [36] मगर आज दृश्य बदल चुका है उनके कार्य का सार्थक विश्लेषण हो रहा है, कुहरे साफ होने लगा है यहाँ तक कि अधिकतर साफ हो गया है। लोग उनकी कविताओं को पढ़ रहे है,उनके सांस्कृतिक कर्म के प्रभाव और परिणाम को स्वीकार कर रहें हैं।

## निष्कर्षः

कवि, आलोचक, संस्कृतिकर्मी, आयोजक अशोक वाजपेयी साहित्य (काव्य) के अलवा भारतीय जितने भी महत्व पूर्ण कलाएँ हैं सबका ख्याल रखते हैं। लगभग सभी कलाओं क बारे में थोड़ी बहुत जानकारी तथा विशेषज्ञता उन्हें हैं। सभी कलाओं के प्रति उन्हें रूचि भी हैं और सबका वे समान कदर करते हैं। बतौर एक कवि के रूप में कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में भी अन्यान्य कलाओं को जगह देते हैं। कविता के माध्यम से ही वे पाठकों दूसरे कलाओं से परिचित कराने के साथ-साथ उन सबके प्रति रूचि जगाने की चेष्टा करते है।

भारतीय जीवन में तथा भारतीय संस्कृति में साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं के सह अस्तित्व का स्वीकार है। इस तथ्य और सत्य को समसामयिक दौर में लगभग भूला दिया गया था लेकिन कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ हमें याद दिलाते है कि यह भूलना नहीं चाहिए हालाकि याद रखना जरुरी हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ साबित करती हैं कि साहित्य व कलाएँ मनुष्य का एकमात्र स्थायी प्रजातन्त्र हैं। जहा दृष्टियों की बहुलता ही अस्तित्व का मुलाधार है। अतः कवि लेखक या कलाकार को किसी भी एक दृष्टि तक सीमित रखना ठीक नहीं है उन्हें बहुलतावादी दृष्टि की हिमायती होनी चाहिए तभी वह सार्थक और परिपूर्ण बन सकते है। अर्थात साहित्य और कलाओ को एक व्यापक परिवेश में देखने की जरुरत है।

कवि अशोक वाजपेयी की अन्यान्य कला-सम्बंधी कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है कि जीवन पर साहित्य (काव्य) का एकाधिकार नहीं है। अन्यान्य कलाओं का भी समान रुप से है। अतः हमें अन्यान्य कलाओं को हिकारत की नजर से देखना नहीं चाहिए। साहित्य के साथ-साथ सभी कलाओं का समान रूप से हमारे लिए महत्व हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कविताएँ यह भी अहसास दिलाते

है कि लेखक और कलाकार की समाज में महत्वपूर्ण भूमिका है। अत: उन सबको समाज मे योग्यस्थान भी मिलना चाहिए। स्बंय अशोक वाजपेयी इस क्षेत्र में कारगर कदम उठाते हैं। वह अव्यन्त महत्व रखता है। काव्य और काव्येतर कलाओं में सहोदरी-बिरादरी होते हुए भी सभी कलाओं को अपनी-अपनी स्वापन्तता भी है। अर्थात सभी कलाओं के अपना-अपना एक जीता-जागता समाज भी है, जिस पर भी उनकी कविताएँ सम्पूर्णसजग हैं।

स्पष्ट है कि काव्येतर कलाओं से कवि अशोक वाजपेयी का सम्बंध सिर्फ कवि कविता के धारातल तक सीमित नहीं है। काव्य के अलावा विविध कलाओं से उनका सम्बंध बहुरंगी बहुआयामी और बहुत मार्मिक स्वर तक का सम्बंध रहा हैं। वर्तमान परिदृश्य में जाने-माने संस्कृतिकर्मी तथा कला मर्मज्ञ कवि अशोक वाजपेयी अपने कवि जीवन के शुरूआती दौर से आजतक समान गति से काव्य तथा काव्येतर सभी कलाओं पर काम कर रहें हैं। यहाँ ध्रुवशुक्ल का कथन उद्धृत करना समीचीन होगा क्योंकि वे भी मानते है कि कवि अशोक वाजपेयी किस कदर कविता के साथ-साथ अन्य कलाओं के प्रति दायित्वशील और सजग है -- 'जिस तरह एक न्यायाधीश चौबीचों घंटे न्यायाधीश की ही भूमिका में रहता ह भले ही वह अदालत में न हो। उसके घर जाकर भी आधीरात को जमानत कराई जा सकती है। अशोक वाजपेयी हमारे समय में ऐसे ही संस्कृतिकर्मी हुएँ हैं। उन्हें राग, अभिनय, मुद्राओं, रंगाकारों, मूर्तियों और शब्दों के पक्ष में खड़ा होने के लिए आधी रात को जगाया जा सकता है। भरीबरसात में उन्हें भारत भवन की चिन्ता लगी रहती कि कहीं हुसैन या रजा की पेंटिग्स गीली न हो जाएँ। अनहद में संग्रहीत मल्लिकार्जुन मंसूर और कुमार गन्धर्व की आवाज को कहीं फफूँद न चाट ले।' [37] अत: यह उम्मीद की जा सकती है कि आज नहीं तो कल अर्थात अगली पीढ़ियाँ जरूर उनके कार्यो का सही

आकलन करेगा और भारतीय कलाओं तथा सांस्कृतिक परिवेश में वे एक नक्षत्र जैसा जाज्वल्यमान बना रहेगा।

# सुन्दर और असुन्दर

हम सब सुन्दरता के पुजारी हैं। सुन्दरता हमें अच्छा लगता हैं, हम उससे रिझते हैं,पूजते-भजते हैं। उसे सुंघना चाहते हैं, छूना चाहते हैं, फिर उसे अपनाना चाहते हैं। और 'असुन्दर' से घबराते हैं डरते हैं और दूर भागना चाहते हैं। यह हाल सिर्फ मेरा और आपका नहीं हैं, हर किसी का हैं। मेरी बेटी जब लगभग दो महिने की थी तब से ही पलंग के पास दिवार पर टंगाहुआ कैलेण्डर में बड़ा-सा लालरंग का खिला हुआ गुलाब फूल की तरफ देखती रहती थी, देखती रहती थी। यहाँ तक कि जब वह रोती थी तब उसे उस फूल दिखाया कि वह देखो तब भी पलभर के लिए उसका रोना बन्द हो जाता था। मेरे बुढ़े पिताजी के पेशानियों में चिन्ता की, घबहाट की वह लकीरें भी मैंने देखा है कि खून-पसीने से बच्चों को जितना भी हो सके पढ़ाया मगर किसी का भी कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लग रहा है। फिर आज उनके चेहरे पे वह चमक भी मैंने लक्ष्य किया कि चलो ! मेरा मेहनत रंग लाया। छोटा-मोटा जो भी हो अपने अपने हिसाब से सबको काम मिल गया हैं। मैं भी अक्सर मेरे गाँव के बारे में सोचता हूँ जहाँ निरक्षरता की संख्या बहुत ज्यादा है। छोटे-छोटे मासूम बच्चें सुबह होते ही अपने मैली-कुचैली कपड़े पहनते हुए ईंट की भट्टी में या और कहीं काम के लिए निकल जाता हैं। फिर जब उनमें से दो चार बच्चें सुन्दर-सुन्दर पोशाक से सुसज्जित होकर स्कुल जाते हैं, मुझे बहुत अच्छा लगता है कि मेरा गाँव भी एक दिन सुन्दर होगा। इन सबके देखा-देखी और भी निकल आँऐगें। देश-दुनिया के बारे में तो सोच नहीं पाता हूँ फिर भी जब-कभी भी पत्र-पत्रिकाओं में देखता हूँ कि अमुक भारतीय छात्र या छात्राएँ किसी भी क्षेत्र में उस मुकाम को हासिल किया है जो अन्तरराष्ट्र में और कोई कर नहीं पाया है। या इस साल भारत बर्ष में इतना अन्न उपजाऊ हुआ है कि कोई भी भुखा नहीं रहेगा।

तो बहुत अच्छा लगता है, बेहद खुशी होती है। इसके विपरीत जब भी देखता हूँ कि अमुक जगह में साम्प्रदायिक दंगे में इतने लोग मारे गये इतना घर जल गया या कि बाढ़ के कारण इतने सारे लोग मर गये, इतने सारे जीव-जन्तु पानी में बह गये तो बहुत दुख होता है, छटपटाहट होती है। तो हर एक विवेकवान मनुष्य सुन्दर का कायल है और असुन्दर से नफरत करते हैं। कवि-लेखक या कलाकार की तो बात ही कुछ और है। स्रष्टा की दृष्टि ही कुछ और होते हैं, वे सब कहीं अधिक संवेदनशील होते हैं, वे सिर्फ बाह्य नेत्र से ही संसार को देखते नहीं है अन्तरचक्षु से भी देखने हैं। कवि या लेखक मात्र बाह्य सौन्दर्य या रूप को निहारते नहीं है या सिर्फ बाहरी कुरूपता को या असुन्दरता को ही देखते नहीं है। वे तो बाह्य के साथ-साथ मन की सुन्दरता का भी आशिक होते हैं और इसी के साथ-साथ बाह्य और अन्दर की कुरूपता या असुन्दरता से हायरान-परेशान होते हैं। कवि अशोक वाजपेयी के लिए भी यह सौ-प्रतिशत सही ह क्योंकि आधुनिक कवियों में वे एक बुजुर्ग, अनुभवी और अत्यन्त संवेदनशील कवि हैं।

कवि अशोक वाजपेयी को भी सुन्दरता लुभाता है और असुन्दर से वे घबराते है, आहत होते हैं। यहाँ केवल बाह्यिक सुन्दर-असुन्दर की चर्चा नहीं की जा रही है, वह सुन्दर और असुन्दर की चर्चा है जो बाह्य और आन्तरिक दोनों से सम्बंधित हैं। कवि अशोक वाजपेयी जिस सुन्दर और असुन्दर का विचार-विश्लेषण तथा चित्रण अपनी कविताओं में करते हैं वह तन का भी और मन का भी है, मनुष्य का भी और मनुष्येतर प्राणियों का भी हैं कविता का भी और प्राकृतिक दृश्यों का भी है। कई बार वह दिखाई पड़ता है फिर ऐसा भी होता है कि उसे सिर्फ महसूस किया जाता है, अनुभव भर किया जा सकता है। इसी के साथ यह भी एक जटिल प्रश्न है कि किसे सुन्दर कहें और किसे असुन्दर माना जाय? इस सवाल के बारे में चर्चा यहा इसलिए प्रासंगिक होगा क्योंकि कवि अशोक वाजपेयी के साथ या उनकी

कविताओं को लेकर यह प्रश्न बार-बार उठाया गया है। जो भी हो यह एक उलझाव पूर्ण शब्द या प्रश्न है क्योंकि कहते हैं न कि सुन्दरता और असुन्दर चीजों में नहीं नजरों में होता है। अर्थात देखने वाले पर निर्भर होता है क्या सुन्दर है और क्या असुन्दर। कवि अशोक वाजपेयी की अनेक कविताओं में उनकी अपनी दृष्टि और रुचि संवलित सुन्दर और असुन्दर का वर्णन हैं। उनकी एक लम्बी कविता है जिसका शीर्षक है **'दुख ही जीवन की कथा'**। इस कविता में कवि यह कहते हैं कि सिर्फ देखने में जो सुनहला, रंगीन और खुबसूरत होता है वही सुन्दर नहीं है। दुख और कठिनाइयों के वक्त भी कई चीजों में, प्रकृति के विविध रूपों में सुन्दरता नजर आती हैं —

**'भले सुन्दरता नहीं बरसती**
**धूप या बारिश या अँधेरे की तरह सब पर,**
**दुख के दिनों में**
**जब आँखें नम होती हैं**
**तब भी हम धुँधलके में उसे कहीं नजदीक होते देख पाते हैं**
**संगीत की संयमित बारीकियों में, खिड़की पर काँफी पीती प्रौढ़ा में,**
**शेर-भालू-बन्दर और एक मनचाहे जानवर को जोड़कर**
**पोते के लिए रात को गढ़ी गई कहानी में।'** [38]

'कृतज्ञता ज्ञापन' शीर्षक कविता में भी कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं कि कुछ भी सुन्दर हो सकता है कहीं भी सुन्दरता दिखाई दे सकता है अगर हम उस दृष्टि से देखें। यहाँ तक कि मटमैले प्रेम में भी —

**'धन्यवाद**
**मटमैले प्रेम**
**कि तुमने सिखाया किऊबड़ खा बड़**

**और अनाप-शनाप को भी**

**गूँथा जा सकता है सुन्दरता में**

**और कोमलता के लिए अब भी गुंजाइश है,** [39]

कहने का मतलब है कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जो सुन्दर और असुन्दर का वर्णन है वह अन्यन्त विशाल और विस्तृतता के साथ है। सुन्दरता के उपासक तो कवि अशोक वाजपेयी हैं ही इसमें किसी को दिक्कत नहीं है अर्थात सबको मालूम है। यहाँ तक कि इसी कारण कवि अशोक वाजपेयी को कई बार कलावादी या फिर देह और गेह का कवि कहकर भी फटकारा गया है। एक अपर पक्ष के रूप में कवि अशोक वाजपेयी असुन्दर से भी उतना ही बल्कि उससे ज्यादा नफरत करते है, चिन्तित है, हायराण-परेशान होते हैं। कवि अशोक वाजपेयी की कविता-संसार में विचरन करते हुए इन दोनों पक्षों का अर्थात सुन्दर और असुन्दर को कवि किस रूप में देखते हैं, चित्रण करते हैं हर सम्भव आकलन किया जा रहा है।

**'सुन्दर' का समावेश :**

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में सुन्दर का समावेश प्रचुर मात्रा में देखने की मिलता है। वैसे भी प्रयेक कवि सुन्दरता के कायल होते हैं। अपनी कविताओं में सुन्दरता का वर्णन करना अपना और कविता का धर्म समझते हैं। कवि अशोक वाजपेयी इस मामले में अन्यों से कहीं आगे हैं वे अपनी 'स्तुति' शीर्षक कविता में कहते हैं मेरी कविता उन सबके सामने सिर झुकाती है जो इस पृश्वी को सम्भव और सुन्दर बनाते हैं जान-बुझकर या अनजान में ही सही। इससे यह स्पष्ट है कि सुन्दरता को लेकर कवि कितना गम्भीर हैं। इसे वे अपनी कविताओं का लक्ष्य समझते है। कुछ पंक्तियाँ —

**'मेरी कविता उन सबके सामने सिर झुकाती है**

**जो हमारी दुनिया को सम्भव और सुन्दर बनाते हैं,**

**बिना जाने या जताए कि वे ऐसा कर रहे हैं**

**आज मेरी कविता सिर्फ उनकी स्तुति है।'** [40]

उनकी ढेर सारी ऐसी कविताएँ हैं जहा सुन्दर या सुन्दरता के विभिन्न रूपों का, रगों का सजीव और अर्थपूर्ण वर्णन किया गया हैं। यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि 'सुन्दर' या सुन्दरता का अर्थ कोई एक नहीं है, यह एक बहूरूपी शब्द है। स्थान, काल और पात्र के हिसाब से इसका अर्थ बदलता जाता है। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में भी विविध सन्दर्भो और विविध रूपो में सुन्दर शब्द व्यवहार हुआ हैं 'सुन्दरता' सिर्फ कविता का ही नहीं जीवन का भी एक आधार शब्द है। सुन्दरता क बारे में विजयेन्द्र स्नातक जो कहते है काफी महत्वपूर्ण है — 'सौन्दर्यानुभूति चित्त की उस अवस्था का नाम है, जो विकृतियों के रहते हुए भी चित्त को सौन्दर्य के क्षणों में विकारी नहीं होने देती।' [41] कविता के लिए तो बात कुछ और ही है। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र जी के शब्दों में कहे तो — 'कविता का राज्य सौन्दर्य ही है और यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो कविता न केवल सौन्दर्य का मूर्तिमान रूप है अपितु वह नूतन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती है।' [42] कविता में सुन्दरता का अर्थ साधारणत : सुन्दरता का जो अर्थ है उससे भिन्न होता है। इस प्रसंग में विनय-विश्वास का कथन उद्धृत किया जा सकता है — 'कविता की सुन्दरता यह है कि उसके लिए सुन्दरता उद्योग नहीं है। कॅरियर नहीं है। दिखावा नहीं है। शरीर मात्र नहीं है। स्वाद भर नहीं है। कविता की सुन्दरता का अर्थ है — जीवन की मानवीय और वास्तविक सुन्दरता। केवल शरीर पर आधारित न होने की मानवीय और वास्तविक सुन्दरता। केवल शरीर पर आधारित न होने के कारण यह सुन्दरता चार दिन की चाँदनी नहीं होता। स्वाद-भर न होने के कारण केवल जीभ की स्वाद मिटाकर ही मिट नहीं जाती। दिखावा न होने के कारण सच्ची होती है।

कैरियर न होने के कारण लाभ-लोभ की संकीर्णता से मुक्त होती है।' [43] इन सब बातों के जानकार कवि अशोक वाजपेयी हैं जिसका प्रमाण उनकी कविता ह। वे यह भी कहते हैं कि सुन्दरता कहीं भी हो सकता है, कहीं भी देखा जा सकता है मगर हमारा यह कर्तव्य है कि उसकी रक्षा करें क्योंकि 'सुन्दर' स्वंय की रक्षा नहीं कर सकता है इसके विपरीत सुन्दरता को नष्ट करनेवाले बहुत हैं। 'सुन्दर वेध्य' शीर्षक कविता में उनका कहना हैं —

**'स्थापत्य सुन्दर है,**
**शरीर सुडौल है,**
**आत्मा सुन्दर है,**
**लेकिन सुन्दरता सबसे अधिक वेध्य है :**
**वह अपना बचाव स्वंय नहीं कर सकती।**
**उसे कोई या कुछ और ही बचा सकता है।'** [44]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में सिर्फ देह की सुन्दरता का चित्रण करते है, ऐसी बातें नहीं है। उन्होंने अपनी कविताओं में तन-मन, बुद्धि-विवेक, भावनाओं और विचारों की तथा प्रकृति और परिवेश की सुन्दरता का भी खुबसूरती के साथ चित्रण करते हैं। अर्थात मूलत : यह मानव और मानवीयता की सुन्दरता है। फिर आगे चलकर यह कविता की सुन्दरता भी है। कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जो 'सुन्दर' विषयक विचार विरलेषण हैं या उनकी दृष्टि कोण रहा है उसे खंड खंड रूप में न देखकर बल्कि अखवंडित रूप से यहाँ देखा जा रहा है। क्योंकि सुन्दरता एक सापेक्ष शब्द है अत : उसे स्बंडित रूप में देखना एक जोखिम भरा कार्य भी है। विजयेन्द्र स्नातक भी कुछ ऐसा ही मानते है। उनका कथन उद्धृत किया जा सकता हैं — 'सौन्दर्य, वास्तव में मानव मन में उद्वेलित होने वाले नाना प्रकार के भावों विषयों में संशिलष्ट होकर रहनेवाला तत्व है। इसलिए उसके

अस्तित्व की अंखंडता को स्वीकार करना चाहिए। यदि खंड-खण्ड करके सौन्दर्य की समीक्षा की जाएगी तो उसमें आवृत्ति और पुनरावृत्ति का भय सदैव बना रहेगा।' [45] ऐसे ही कुछ कारणों से कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जो सुन्दर का समावेश हुआ है उसे अंखंडित और सम्यक रूप से देखने का प्रयास किया जा रहा है। दरअसल कवि अपनी चीख, प्रार्थना और गान से 'सुन्दर' को ही पुकारते है। 'किस' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में कवि की इन्ही भावनाओं का उदघोष देख को मिलना हैं —

**'मैं अपनी चीख से**
**प्रार्थना से**
**गान से**
**किसे पुकारता हूँ —**
**सिर्फ उसे**
**जो एक अनसुनी दोपहर में**
**सुन्दर और दूर है।'** [46]

कवि अशोक वाजपेयी की कविता संसार के एक बहुत बड़ा हिस्सा प्रेम सम्बंधित कविताओं का रहा है। प्रेम या श्रृंगार के साथ सुन्दर अथवा सौन्दर्य का अटूट सम्बंध होता है। प्रेम और सौन्दर्य अपने मूल रूप में तत्वत: एक ही है। साथ ही ये दोनों प्राणी-मात्र के जीवन के मूल आधारभूत तत्व भी है। अत : कवि अशोक वाजपेयी के इन प्रेम कविताओं में नायिका अथवा प्रेमीका का शारिरीक सौन्दर्य का वर्णन बहुत ही सुन्दर और सजीव ढंग से किया गया है। कई बार उनके ढेर सारी प्रेम कविताओं में ऐन्द्रिक सौन्दर्य बोध का जिता-जागता स्वरुप भी देखने को मिलता है। इस प्रसंग में अजीत चौधरीजी का कहना समीचीन लगता है जो यह द्रष्टव्य है — 'अशोक वाजपेयी ने अपनी प्रेम कविताओं में प्रेम-व्यापार एंव उसकी

प्रक्रिया के क्रमिक सोपानों को कविताओं में चाक्षुष सौन्दर्य बोध 'सद्य : स्नाता' से शुरू होकर प्रेम की प्रस्तावना, मनुहार, लज्जा-रूढ़ता, स्वीकार, प्रतीक्षा एंव विदा तक अदभूत सौन्दर्य-चेतना एवं ऐन्द्रिक-बोध के नए-नए आयाम उद्घाटित एंव पुनराविष्कृत होते जाते हैं।' [47] यहाँ तक कि जब हम प्यार करते हैं तब दुनिया दरअसल जैसे के तैसे ही रहता है फिर भी लगता है दुनिया को कुछ छोटे-छोटे अंशों में सिद्ध करते हैं।

कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता है जिसका शीर्षक है 'सम्हालकर'। प्रस्तुत कविता में कवि शरीर के साथ-साथ आत्मा का सौन्दर्य भी बहुत ही नाजुक और खुबसुरती तथा शालीनता के साथ वर्णन करते हैं —

**'उसकी कंचन-काया**
**पंखों-पंखरियों से बनी है,**
**उसकी निश्छल आत्मा गढ़ी गयी है**
**पवित्र उच्चलता से,**
**उसका प्रेम रचा है**
**राग से पराग से —**
**उसे सम्हालकर**
**मेरे पास लाना, देवताओ'!** [48]

कवि शारीरीक सौन्दर्य वर्णन में शरीर के कई प्रमुख अंगों का अलग-अलग कविताओं अलग अलग ढंग से वर्णन करते हैं जैसे होंठ, नेत्र, हाथ, बाहें आदि। इन सब कविताओं में कवि अशोक वाजपेयी इन अंग-प्रत्यंग के बाहय सौन्दर्य तथा आन्तरिक सौन्दर्य को कल्पनाओं के समाहार से आकर्षक रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक उदाहरण लिया जा रहा है उनकी कविता 'ओंठ' शीर्षक में से —

**'तराशने में लगा होगा एक जन्मान्तर**

**पर अभी-अभी उगी पत्तियों की तरह ताजे हैं**

**उन पर आयु की झीनी ओस हमेशा नम है**

**उसी रास्ते आती है हँसी**

**मुस्कुराहट**

**वहीं खिलते हैं शब्द बिना कविता बने**

**वहीं पर छाप खिलती है दूसरे ओंठों की'** [49]

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में जो सौन्दर्य वर्णन सम्बंधी कविताएँ हैं उनकी एक बहुत बड़ा हिस्सा घेरकर रखा है बाल-सौन्दर्य वर्णन की छटाओं ने। उनकी ढेर सारी कविताएँ हैं जहाँ कवि नन्हें-नन्हें बच्चों के विविध अंगी-भंगी तथा मुद्राओं को अत्यन्त सहजता और सुन्दरता के साथ चित्रित करते है। जो यथार्थ के साथ साथ आकर्षक और मनमोहक भी है। नन्हीं बच्ची जब पहलीबार चलने लगती है वह उगमग चलती है कई बार वह गिर पड़ती है फिर चलती है। यह जो दृश्य कितना सुन्दर लगता है हर किसी का मन-मोह लेती है। उन मासूम बच्चों के साथ उस समय हम भी सुन्दर हो जाते है। कवि अशोक वाजपेयी ऐसे ही सुन्दर दृश्य का चित्रण उपनी 'डगमग' शीर्षक कविता में करते है कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'वह डगमग चलती है**

**तो सारी पृथ्वि डोलती है,**

**उगमगाता है आकाश,**

**डगमगाता है**

**आदिकाव्य, ऋग्वेद की ऋत्राएँ,**

**मन्दिरों में विजड़ित देव प्रतिमाएँ**

**मेरी कविता का टेढ़ा-मेढ़ा आँगन,**

**वन प्रान्तर में अचानक हो गया सुनसान,**

**कनफोड़ शोर के बीच चिड़िया की तरह दुबक गया मौन।'** [50]

कवि अशोक वाजपेयी की एक लम्बी कविता है 'अपने नवजात पोते के लिए एक स्वागत-गीत' शीर्षक से। यह कविता बाल-सौन्दर्य वर्णन के उत्कृष्ट नमुने पेश करने के साथ-साथ जन्म और मृत्यु जैसे गहन विषय पर कवि को विचारों का इजहार देखने को मिलता है। कवि अपने पोते के जन्म कहानी के माध्यम से जीवन और जगत संबधित कई महत्वपूर्ण मसले की ओर भी हमारा ध्यानाकर्षन करते है। घर में बच्चे पैदा होना फिर उस बच्चे का से जुड़ी हुई घटनाएँ कहानियाँ किस कदर घर का माहौल बदल डालता है। घर में एक तरह से खुशी का लहर चलने लगता है। घर के सारे काम-काज पर उसका असर किस तरह से पड़ता है कवि अशोक वाजपेयी इस कविता में सुन्दर रूप में वर्णन करते हैं। प्रस्तुत कविता की कुछ पंक्तियाँ यहा उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'यह कौन है जो मुस्कराता है नींद में भी**

**तो पूरा घर एक फूल की तरह खिल जाता है ?**

**यह किसके रोने की आवाज**

**आधी रात के ठंडे, अँधेरे में**

**सुनकर लगता है कि**

**अंतरिक्ष में कोई तारा विलप रहा है ?**

**यह क्या है किसी देवालय में देवता जैसा**

**जिसे देखे बिना अब दिन शुरू नहीं होता**

**जिसे देखे बिना अब दिन शुरू नहीं होता;**

**जिसकी देवनिद्रा में मुस्कान देखे बिना**

**होती नहीं है रात की शुरूआत;**

**जिसकी आँखों की चमक बिना अब घर में कुछ भी जगमगाता नहीं ?'**[51]

'अपने पोते की दूसरी वर्षगाँठ पर एक प्रार्थना' शीर्षक से कवि अशोक वाजपेयी की एक और महत्वपूर्ण कविता है। यह कविता सचमुच एक अच्छी और सारगर्भित कविता है। कवि अपने पोते के बहाने समूचे बच्चे को, आने वाली पीढ़ी को उद्देश्य करके देश-दुनियाँ के यथा-तत्थ्य को सामने रखते हुए फिर उससे संज्ञान और सचेत करते हुएँ वे उनके लिए प्रार्थना करते है यहाँ कवि जो प्रार्थना करते वह बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इस प्रार्थना की इबारत कुछ और ही है, न वेद महाभारत का श्लोक है, न कुरआन की आयातें। यह प्रार्थना है बेतरतीब और गड्डमड्ड दुनिया में अँधेरे के खिलाफ रोशनी का, अभय की जगह अदम्य का, सच्चाई का कर्म का। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

**'मै तुम्हारे लिए अभय की नहीं अदम्य की कामना करता हूँ,**
**मैं नहीं चाहता कि तुम्हें कुछ उपहार या वरदान की तरह मिले।**
**मैं जानता हूँ कि तुम्हारे बड़े होने पर यह संसार**
**लगभग वैसा ही गड्डमड्ड और झिलमिल होगा**
**जैसा कि बुढ़ाते समय मेरे लिए है :**
**मैं तुम्हें अँधेरे से लड़ने के लिए न कोई मशाल दे सकता हूँ,**
**न उसे टोहने के लिए कोई लाठी।**
**मैं इतना भर चाह सकता हूँ कि**
**देर-सबेर तुम अपनी आग पा लो जिसमें लपक और रौशनी हो**
**और जिसे लड़-भिड़कर अन्त तक किसी तरह बचाये रख सको।**
**सपने और सच में अन्तर करना मेरे लिए हमेशा कठिन रहा है,**
**शायद यह भद तुम जिन्दगी में जल्दी कर पाओ**

**पर चाहता मैं यही हूँ कि**

**शुरू को आखिर तक ले जाने वाली डोर**

**सपने की ही हो, भले सच से बिंधी हुई :**

**हम सपने के परिवार के हैं, सच की बिरादरी के नहीं।'** [52]

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में कर्म-सौन्दर्य का उदाहरण जब-तब देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी की संवेदना उन सौन्दर्य को भी समेटता है जो बाह्य दृष्टि से तो असुन्दर है, कदाचार है मगर उसकी सुन्दरता अन्दर में छूपी हुई होती है। कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता है जिसका शीर्षक है 'सुबह काम पर जानेवाले'। इस कविता में कवि सुबह-सुबह काम पर जानेवाले उन गरीब, मजदूर वर्ग के मजबूरी को जाहिर करते हुए उनमें जो कर्म-सौन्दर्य मौजूद है उसका उदघाटन करते हैं। उन मजदूरों के लिए खाना उतना महत्वपूर्ण नहों जितना कि काम पर समय पर पहुँचना। वे अपनी मा या घरैतिन का बनाया भोजन रास्ता चलते ही खाते हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'कितने अच्छे लगते हैं सुबह काम पर जानेवाले**

**वे जल्दी में होते हैं**

**इसलिए तेजी और फुर्ती से चलते हैं।**

**प्राय : सभी के हाथों में थैले होते हैं**

**जिनमें सुबह-सुबह माँ या घरैतिन का बनाया दोपहर का भोजन**

**जतन से लपेटकर रखा होता है।**

**कुछ लोगों के पास इतना वक्त नहीं होता**

**कि इत्मीनान से अपने घर बैठकर नाश्ता कर सकें**

**सो वे हाथ में उसे लिये रास्ता चलते खाते हैं।'** [53]

कवि अशोक वाजपेयी की 'दो प्रार्थनाए बेटी के लिए' अत्यन्त सुन्दर और अर्थपूर्ण कविता है। कर्म सौन्दर्य की दृष्टि से यह कविता नि:सन्देह एक उत्तम कविता माना जा सकता है। एक पिता होकर कवि अपनी बेटी के लिए कुछ प्रार्थनाएँ करते हैं जहाँ अपनी बेटी के लिए कोई वरदान नहीं मांगते हैं वे तो चाहते है उसे कामकाज में ही सुन्दरता मिले, इस सख्त दुनिया में बने रहने के लिए या दुनिया को सुन्दर बनाने के लिए उसमें इच्छा और शक्ति मिले। फिर उनमें जो कोमल भावनाएँ है वह बरकरार रहें। प्रस्तुत कविता की कुछ पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'उसे पाने दो कामकाज में ही सुन्दरता**
**उसे सयानेपन दो,**
**पर बची रहने दो उसकी निरनुभव सरलता।**
**उसे सख्त दुनिया में संधर्ष करने की इच्छा और शक्ति दो,**
**पर खिली रहने दो उसके मन में कोमल-हरी पत्तियाँ।**
**उसे थोड़ा-सा भरोसा दो कि**
**हाथ ही नहीं शब्द भी दुनिया को समझाते, सुघर बनाते हैं।**
**उसे थामों कि वह फैसला देने में जल्दी न करे**
**क्योंकि दुनिया जितनी हमारी, उससे कहीं अधिक दूसरों की है।**
**उसकी निंद गहरी और सपने निगहबान रहें**
**पर अगर काम पर जाना है तो**
**उसे सुबह थोड़ा जल्दी उठने को कहो,**
**कम-से-कम चिड़ियों और सूरज के साथ तो!'** [54]

सचमुच यह कविता कवि अशोक वाजपेयी की एक उम्दा कविता है। डॉ धर्मवीर तो इसे विश्वस्तर की कविता मानते है। उनका तो यह भी मानना है कि

हिन्दी में साहित्यिक आयोजनों में सरस्वती वन्दना के जगह यह कविता गाया जाना आच्छा रहेगा। उनका कथन उद्धृत किया जा रहा है — 'बच्चे ईश्वर से अपने माँ-बाप के लिए वही प्रार्थना करते रहें जो कोलरिज ने अपनी अंग्रेजी कविता में करवाई है तथा माँ-बाप अपने बच्चों के लिए यही प्रार्थना किया करे जो अशोक वाजपेयी ने अपनी इस हिन्दी कविता में की है। जिम्मेदारी की दृष्टि से उनकी यह विश्वस्तर की कविता है। यह जो हिन्दी के साहित्यिक आयोजन में सब से पहले 'सरस्बती वन्दना' गाने की परम्परा चल निकली है उसके स्थान पर यदि अशोक वाजपेयी की इस कविता को गाया जाए तो ज्यादा अच्छा रहेगा।' [55]

इस दृष्टि से एक और उल्लेखनीय कविता है 'सूर्योदय से पूर्व कवि जागरण' इस कविता में कवि अशोक वाजपेयी समाज के उपक्षित अवहलित गरीब तबके के लोगों के प्रति हमदर्दी जताते हुए प्यार और सम्मान की दृष्टि से देखते है। कवि उन छोटे-छोटे कर्म को और कर्म करने वाले के प्रति मुहब्बत की नजरों से देखते हैं। जहा कर्म-सौन्दर्य का उत्कृष्त नमुना देखने को मिलता है। कविता की पंक्तियाँ —

**'मेरी प्रेमिका कण्डे बेचते हुए अभी यहाँ आएगी,**
**मेरा भाई बिस्किट रोटी बेचता हुआ,**
**मेरी माँ तरकारी-भाजी बेचती हुई,**
**और मेरे दोस्त अखबार बेचते हुए**
**और मेरे पिता पानी भरते हुए**
**यहाँ आँएगे**
**और मेरे पराने किस्म के मकान को घेर लेंगे :'** [56]

मनोरम प्राकृतिक दृश्य हमेशा कवियों के लिए, कविताओं के लिए आधार तत्व रहा है। प्रकृति के सुन्दर दृश्यावली आम तौरपर हर किसी को लुभाता हैं कवियों के लिए तो बात कुछ और ही है। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं

में इसका भरपूर उपयोग किया है। प्रकृति के मनोरम और सुन्दर रूप का वर्णन उनकी कविताओं में जब-तब देखने को मिलता है। यहा एक उदाहरण लिया जा रहा है। कवि अशोक वाजपेयी की एक कविता जिसका शीर्षक है 'प्रेम से' इस कविता में कवि चाँदनी रात की सुषमाओं का वर्णन करते है। आम के पेड़ में आम्रमंजरी लगी हुई है जिससे डाल झुकी हुई है उधर चम्पा के फूल भी खिला हुआ है इन सबके ऊपर अर्थात आकाश में पूर्णिमा के साथ चन्द्रमा जो पूरी ताकत के साथ धवल उज्ज्वल और शीतल चाँदनी फैला रहा था। कुल मिलाकर वह बहुत ही सुन्दर और खुशनुमा रात थी —

**'आम्रमंजरी से झुकी डालों के पीछे**
**चम्पा के फूलों के ऊपर**
**पूर्णिमा थी अपने चन्द्रमा के साथ**
**धवल उज्ज्वल शीतल।'** [57]

## निष्कर्ष :

जीवन में गहरे आशावाद के कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं में सौन्दर्य अथवा 'सुन्दर' आधार भूत प्रेरक तत्व रहा है। एक तरह से उनके समस्त काव्व-कर्म पर ही 'सुन्दरता का व्यापक एंव सशक्त प्रभाव देखने को मिलता है। कवि अशोक वाजपेयी का मानना है : 'वास्तव में जीवन और जगत अपने मूल रूप में सुन्दर है और हम भी जीवन में हर कहीं इसी सुन्दरता को ढूँढ़ते फिरते है जबकि वह बीतता नहीं है सिर्फ ओट है जाता है। 'सुन्दर बीतता नहीं' शीर्षक उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ —

**'सुन्दर बीतता नहीं**
**ओट हो जाता है**
**हम उसे खोजते हैं**

**देवताओं से अरक्षित कोनों-अँतरों में**

**किसी पूरी याद न रह गई उक्ति में**

**निश्छाय वृक्षों के नीचे**

**सूखे गोबर और काठ हो गए फलों के अवसाद में'** [58]

कवि अशोक वाजपेयी मूलतः जीवन के इन मूलभूत शाश्वत तत्व सुन्दरता को बचाना चाहते हैं और इसे अपना जीवन संघर्ष के रूप में ग्रहण कर अपनी पगडण्डी से चलते हुए मंजिल तक पहुँचने की कामना करते है। और अपने इस सच कहीं मुरझा न जाए उसके लेकर भी वे चिन्तित हैं। वे यह भी कामना करते हैं कि अपनी यह आवाज वुलन्द रहे —

**'हो सके तो मैं बचाना चाहता हूँ**

**सुन्दरता को समय से,**

**अनपी पगडण्डी को किसी मार्ग में लय होने से,**

**अपने सच को अपने ही अन्दर मुरझाने से,**

**अपनी आवाज को थरथराने और घबराने से।'** [59]

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में 'सुन्दर' के सभी तत्वों का, स्वरूपों का उनके उत्कृष्ट रूप में उपयोग करते है। शारीरिक सौन्दर्य के साथ साथ (वे मानसिक) मन, वचन, कर्म और प्रकृति के विराट सौन्दर्य के अत्यन्त संतुलित, परिष्कृत और उदात्त स्वरुप का तथा कलागत सौन्दर्य क भी उत्कृष्ट अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार 'सुन्दर' एक शाश्वत जीवन तत्व है फिर उसका सम्बंध और सरोकार सिर्फ शरीर तक नहीं आत्मा तक भी है। उदाहरणार्थ कवि अशोक वाजपेयी की 'आखिरी शाम की प्रार्थनाए' शीर्षक कविता पंक्तियाँ देखा जा सकता हैं, जहाँ कवि यह प्रार्थना करते हैं कि जाने से पहले सबकुछ साफ-सुथरा कर सकें —

**'इतनी सावधानी दो कि**

**जाने के पहले सब-कुछ साफ-सुथरा कर सकें,**

**इतनी सुघरता कि**

**अपना दु:ख और विफलता यथास्थान रख सकें**

**दूसरों के मत्थे नहीं,'** [60]

कवि अशोक वाजपेयी की कवि चेतना मूलत: 'सुन्दर' नामक शाश्वत जीवन तत्वों से प्रेरित होकर जीवन, जगत, तथा उनके विभिन्न सरोकारों के समग्र परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति हुई है। अत: सुन्दर या सौन्दर्य स्पष्ट रूप से कवि अशोक वाजपेयी के काव्य का आधार भूत प्रेरक तत्व है। कवि अशोक वाजपेयी मूलत: जीवन के कवि और चिन्तक हैं। जाहिर है कि उनकी कविताओं और चिन्तन के मूल में विशुद्ध रूप से मानव और मानवतावादी दृष्टि कोण रहा है। कवि के अनुसार यदि ऐसा नहीं कर पाया अर्थात अगर सुन्दरता को अपने जीवन में बचाने में सक्षम नहीं हुआ तो यह मानव जीवन निरर्थक रहेगा फिर अपने को आदमी कहलाने लायक भी नहीं रहेगा। कवि अपनी कविता 'मछुआरा' में यही कहते हैं —

**'अगली शताब्दी एक सुंन्दर मछली की तरह आए**

**जिसे हम खाए बगैर वापस समुद्र में कुछ दुलार से छोड़ सकें**

**सबसे पहले मछुआरे में भी ममता थी**

**और बिलकुल आखिरी मछुआरा भी**

**सुंन्दर को कुछ-न-कुछ बचाएगा,**

**तभी न आदमी कहाएगा।** [61]

कवि को उम्मीद है अगली शताब्दी ऐसा ही होगा। कवि अशोक वाजपेयी की यह कामना और सन्देश सन्वलित दृष्टिकोण कालजयी सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में आधारभूत महत्व रखता है।

**'असुन्दर' की अभिव्यक्ति :**

कवियो की दृष्टि आम लोगों की दृष्टि से कुछ भिन्न होती है कवि हमेशा सिर्फ चर्मचक्षु से ही नहीं देखते है। तात्यर्य यह कि कवि बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट होता ही है उसके साथ ही एक सुन्दर चीजों के अन्दर जो असुन्दर छूपी हुई रहती है या सुन्दरता का यदि कहीं कोई नष्ट करता है उसे भी कवि देखते है। फिर कविता के लिए यह दोनों जरुरी है अर्थात कविता सिर्फ 'सुन्दर' का वर्णन नहीं करते है उसे 'असुन्दर' का चित्रण करना भी उतना ही जरूरी है जितना कि सुन्दर का। एक अच्छे और सच्चे कवि के लिए यह जरुरी है कि वह भयानक अर्थात 'असुन्दर' और 'सुन्दर' को एक साथ देखे। इस प्रसंग में कवि अशोक वाजपेयी का कहना हैं — 'मेरे हिसाब से जिन्हें 'भयानक और सुन्दर' एक साथ नहीं देख पड़ता उन्हें कम दीख पड़ता है।' [62] कवि अशोक वाजपेयी एक अनुभवी, जागरुक और सचेत कवि है अत : एक संवेदनशील कवि होने के नाते समाज में जहा भी, जब भी कुछ असुन्दर देखने को मिलता है या घटता है वे अपनी कविताओं के द्वारा टोकते है भिड़ते है या फिर प्रार्थना करते है असुन्दर या कुरुपता से बचने के लिए, बचाने के लिए। कवि अशोक वाजपेयी अपनो कविताओं में सिर्फ बाह्य दृष्टि से 'असुन्दरता' को लेकर चिन्तित नहीं है वे तो मानव और मानव समाज के_ अभ्यन्तरीन में छूपी हुई असुन्दरता जो कि आज के समाज में जड़ो तक व्याप्त है उसे लेकर अधिक चिन्तित हैं फिर वे इस बात से अत्यधिक मर्माहत ह कि हम सभी कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में जीवन, समाज और प्रकृति को असुन्दर कर रहें हैं। जो कि सर्वश्रेष्ठ–सृष्टि होने के नाते, एक सजग और संवेदनशील प्राणी होने के लिए हम मानवों को सुन्दरता की रक्षा करनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं कर पायेगा तो हमें आदमी कैसे कहलाएगा। अत: कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में जीवन और जगत में फैले असुन्दरता के हर पहलू पर अपनी कविताओं में खुलकर और

गम्भीरता से विचार–विश्लेषण करते हैं। उनकी पैनी नजर जहाँ कहीं भी सुन्दरता का विनष्ट हो रहा है या असुन्दरता का पोषण हो रहा है वहाँ पहुँच जाता हैं।

एक सुखद आश्चर्य है कि कवि अशोक वाजपेयी के कवि जीवन के शुरुआती दौर में एक कविता लिखी थी 'अपनी आसन्न प्रसवा माँ के लिए तीन गीत' शीर्षक से प्रस्तुत कविता में यवा कवि अपनी ही माँ का सौन्दर्य वर्णन तो करतै हैं मगर उस वक्त आसन्न प्रसवा होना उन्हें अच्छा नहीं लगा अर्थात माँ है इसलिए वह सुन्दर है लेकिन ऐसे समय में प्रसवा होना असुन्दर था विलक्षण था। यह कविता कवि अशोक वाजपेयी की पहला कविता संग्रह मे सबसे पहले रखा गया है। स्वंय कवि इस बात को स्वीकारते है। उन्हीं के शब्दों में — '1959 के अन्त में मेरी माँ आसन्न प्रसवा थी और मेरा सबसे छोटा भाई उदयन होने जा रहा था। मुझे वह विलक्षण लगी और मैंने एक कविता लिखी 'अपनी आसन्न प्रसवा माँ क लिए तीन गीत', जिसका एक अंश इस प्रकार था :

**'तुम ऋतुओं को पसंद करती हो**
**और आकाश में**
**किसी न किसी की प्रतीक्षा करती हो।**
**तुम्हारी बाहें ऋतुओं की तरह युवा हैं**
**तुम्हारे कितने जीवित जल**
**तुम्हें घेरते ही जा रहे हैं।'**

विश्वविद्यालय के साहित्यिक हलकों में इस कविता को लेकर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। अपनी माँ को आसन्न प्रसवा कहने से लेकर उसके सौन्दर्य का बखान सभी पर आपत्ति थी।' [63] जो भी हो इस कविता से साफ जाहिर होता है कि कवि अशोक वाजपेयी की दृष्टि कितना तीक्ष्ण है और कविता के लिए जो सत्साहस की जरुरत है वह उसमें कितना है। आगे चलकर कवि अशोक वाजपेयी समाज में,

जीवन में या फिर प्रकृति पर जहाँ भी असुन्दर या कुरुपता उन्हें नजर आता है अपनी कविताओं में उसे स्थान देते हैं, उसे रेखांकित करते हैं। जिसका प्रमाण उनकी ढेर सारी कविताओं में फैला हुआ है।

कवि अशोक वाजपेयी को पता है यह संसार जो हमें मिला है वह कुलमिलाकर सुन्दर है वाबजूद बहुत सारी मुश्किलो के, जटिलताओं के जिससे हम प्यार भी करते हैं। लेकिन सड़क पर मिले रवि मोहन से उन्हें पता चलता है कि किस तरह उसके उपरवाले पड़ोसी ऊपर से पानी फेंकते है और उसके वालकनी गीला करने के साथ-साथ गन्दा भी करते है। रवि मोहन झुँझलाए हुए थे उनका तो मानना है सिर्फ ऊपर वाले पड़ोसी ही नहीं आजकल तो संसार के सभी लोग दूसरों की जिन्दगी और घर गन्दा करने में लगे हुए हैं। इसके अलवा ऊपरवाले देवता भी। इस कविता में कवि अशोक वाजपेयी समसामयिक समाज पर तीखा टिप्पणी करते हुए ऊपरवाले देवता को छोड़ा नहीं है। सचमुच आज हमारे समाज में हर कोई अपने बल के हिसाव से दूसरों की जिन्दगी को असुन्दर या गन्दा कर रहे हैं। प्रस्तुत कविता का शीर्षक है 'सुबह-सुबह' कुछ पंक्तियाँ यहा उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'लेकिन सड़क पर मिल गए रविमोहन**
**जो झुँझलाय हुए थे**
**अपने ऊपर के पड़ोसी के हर दिन नीचे पानी फेंकने**
**और उनकी बालकनी में कुछ न कुछ गीला-गन्दा कर दने से।**
**उन्होंने मुझे समझाया कि**
**संसार में सभी लोग दूसरों की जिन्दगी, घर को**
**गन्दा करने में लगे हुए हैं**
**सिर्फ ऊपरवाले पड़ोसी ही नहीं, बल्कि ऊपरवाले देवता भी।'** [64]

आगे चलकर कवि अशोक वाजपेयी को अपनी कविता 'दुनिया कुछ ठीक सी' शीर्षक में यकीन हो जाता है कि आज एक दिन तो दूर की बात थोड़ा-सा समय भी लगता नहीं कि दुनिया कुछ ठीक सी है। सुबह-सबह हरियाली में चिड़िया चहकती-फुदकती है और ढंडी हवा में हरी पत्तियाँ काँपती भी है। जो देखने में सुन्दर भी लगता है फिर भी कहीं न कहीं यह भय सताता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है। यह जो बाहर से देखने में सुन्दर लग रहा है असल में यहा भी मूलत: 'असुन्दर' ही है —

**'अब एक दिन क्या,**
**थोड़ा सा समय भी नहीं होता**
**जब दुनिया कुछ ठीक सी लगे।**
**सुबह उठो तो हरियाली में चहकती चिड़िया**
**और हल्की ठंडी हवा में काँपती पत्तियाँ**
**सुंन्दर तो लगती हैं**
**पर यह यकीन नहीं दिला पातीं**
**कि सब ठीक चल रहा ह।**
**कहने को यह उनका काम भी नहीं है।'** [65]

कवि अशोक वाजपेयी की एक महत्वपूर्ण कविता है 'अपने साढ़े छ: महीने के पोते के लिए एक युद्धगीत' शीर्षक से। इस कविता में कवि कंारगिल युद्ध के प्रसंग में अपने साढ़े छ: महिने के पोते के बहाने युद्ध की तबाही, बरवादी और विभिषिका का चित्रण करते है। वे कहते है कि जिस दुनिया में हम हैं धमाकों और विस्फोटों के कारण हर रोज कुछ सुन्दर नष्ट हो रहा है। वह भी बेवजह। युद्ध में आखिर कोई न कोई तो मारा जाता है। कवि विश्ववन्धुत्व की भावना को जाहिर करते हुए, मानव का कल्याण कामना करते हुए यह समझाना चाहते है कि आखिर

जिससे हम युद्द करते है, युद्ध में जिसे हम मारते है या मारे जाते है आखिर वह हमारा भाई या पड़ोसी ही तो है। फिर भी हम युद्ध करते हैं जहा न जाने कितने सुन्दर जीवन नष्ट होता और न जाने कितने सुन्दर जीवन असुन्दर हो जाता है। प्रस्तुत कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ देखा जा सकता हैं —

**'पर हम सब, हम और तू भी,**
**मेरे पोते,**
**एक ऐसी दुनिया में हैं जहाँ हर रोज**
**कुछ सुन्दर बेवजह नष्ट हो रहा है,**
**धमाकों और विस्फोटों के साथ।**
**हर युद्ध के साथ कुछ सुंन्दर और पवित्र नष्ट होता है।**
**युद्ध अक्सर होता है भाईयों और पड़ोसियों के बीच,**
**हमसे लड़ने कहीं और से दुश्मण नहीं, भाईऔर पड़ोसी ही आते हैं —**
**इसलिए युद्ध एक पवित्र शब्द कमी नहीं हो पाता।'** [66]

इसी सिलसिले में कवि आलोचक अशोक वाजपेयी की एक और उल्लेखनीय कविता है जिसका शीर्षक है 'लुहार'। इस कविता में भी कवि आदमी आदमी की दुनिया को किस कदर नष्ट कर रहा है उसको रेखांकित करते है। अपने बदहाल जमाने पर सही टिप्पणी करते हुए उनका कहना है कि जिसे हम तरक्की समझते है वह दरअसल विनाश है। और यह विनाश और विध्वंश हम ही कर रहे है सुर और असुर ने नहीं। एक लुहार की भट्टी मे तो सिर्फ लोहे को पिघला कर आवश्यकतानुसार आकार दिया जाता है लेकिन इस सदी में या हमारे समय की भट्टी में जो कुछ ऐसी चीजे बनाया जा रहा है हम ही बना रहे हैं उससे तो पलभर में न जाने कितने सुन्दर जीवन तथा प्राणी, पेड़-पौधे और पशु-पक्षीयों को भाप बनाकर

उड़ा देता है। इससे असुन्दर भला और कुछ हो सकता है? उक्त कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणनार्थ पेश हैं —

**'मैं जानता हूँ कि मेरी भट्ठी में भले**
**एक छोटा-मोटा ज्वालामुखीसा उमड़ता है**
**जब पिघला हुआ लाल लोहा मैं किसी साँचे मे उड़ेलता हूँ तो**
**यह उस लावे का हिस्सा नहीं है**
**जो इस सदी में सुरों या असुरों ने नहीं**
**आदमी ने आदमी की दुनिया पर**
**सैकड़ों बार बहने दिया है।**
**मेरी भट्ठी ज्यादातर चके बनाती है**
**कभी-कभार गँड़ासा भी**
**लेकिन हमारे समय की भट्टियों में तो लगातार,**
**वह सब कुछ बनता रहा है।**
**जो आदमी, पेड़, पशु-पक्षी सबको**
**भाप जैसा उड़ा देता है।'** [67]

दरअसल यह जो संसार है विधाता ने रचा है यह सुन्दर है और सुघर भी है। कवि अशोक वाजपेयी के अनुसार इस सुन्दर संसार को हम हो लोगों ने नष्ट करते हैं, बेडौल करतै हैं। कवि इस तरह से 'एक भी शब्द नही' कविता में संसार को नष्ट करते देखकर और असह्य और असुन्दर बनाते देखकर त्रस्त है, चिन्तित है। मगर कवि यहा निरूपाय है इसकी शिकायत करे तो किससे करें? क्योंकि हर कोई इसमें शामिल हैं। अत : कवि आखिर काँपती हरिपत्तियों से पूँछते हैं कि यह संसार इतना बेठव क्यों है? कवि अशोक वाजपेयी इस कविता के माध्यम ये व्यग्यात्मक शैली अपनाने हुए दरअसल लोगों में जागरूकता लाने की कोशिश की है —

**'हम करते हैं रत्ती-रत्ती संसार को नष्ट या बेडौल,**

**हम बनाते हैं संसार को असह्य और असुन्दर,**

**और फिर पूछते हैं**

**कोई और नहीं मिलता तो काँपती हरी पत्तियों से**

**कि यह संसार इतना बेढब क्यों है ?'** [68]

भदेसपन और अनगढ़ता से भी सौन्दर्य की सृष्टि हो सकती है ठीक उसी तरह सुन्दर से सुन्दर चीजों में भी कभी-कभाार असुन्दरता नजर आता है। कहते है न सुन्दर असुन्दर निर्भर करता है देखनेवाले के ऊपर। कुछ वैसा ही दृश्य कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'आओगी' में देखने को मिलता है। आम तौर पर सुबह परिवेश सुहावना होता है, मन और शरीर को आनन्द देनेवाला होता है। लेकिन इस कविता में कवि किसी की प्रतीक्षा में है, इन्तजार में है जो नहीं आ रहा है। जिससे सुबह-सुबह भी उन्हें उमस सी लग रहा है फिर सुबह निकली उस धूप में भी कुछ अप्रीतिकर चमक महसूस हो रहा है। साथ ही आसपास के हरे रंग का वनस्पति भी बेराहत लग रहा है। कुछ पंक्तियाँ —

**'सुबह का वक्त है**

**उमस-सी है**

**और धूप में एक अप्रीतिकर चमक भी।**

**वनस्पति का हरारंग भी बेराहत लग रहा है।'** [69]

कुछ ऐसे ही एक और उदाहरण देखा जा सकता है कवि अशोक वाजपेयी की 'किससे' शीर्षक कविता में कवि अपने पेड़-पौधें से हरा-भरा घर की याद करते है जिसे कई साल पहले छोड़के आया है। कवि को वह घर वापस मिलने वाला नहीं है अगर मिल भी जाय तो फिर वह हरियाली, वह पक्षीयों का कलरव

कहा मिलेगा ? अब तो सबकुछ बदल चुका है, सबके सब बिरान हो चुके है। कुछ पंक्तिया उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'हम किससे अपना घर,**
**सुख पूछने जाएँगे ?**
**जब आकाश बन चुका है**
**चिथड़ों का बेसहारा चँदोबा**
**और एक लूप्त नदी में बची रह गई**
**सूखी रेत, सड़ी कोई और कुछ हड्डियों की तरह**
**बची पड़ी है पृथ्वी —'** [70]

कवि अशोक वाजपेयी के एक महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है 'समय के पास समय'। इस संग्रह में 'कुँजड़ा' शीर्षक कविता में कवि एक तो सामाजिक यथार्थ का वर्णन करते हुए इस सदी में सामाजिक ढाँचे में किस कदर बदलाव आया है उसको दिखाते है। फिर इस बदलाव में जो असुन्दरता है उसको रेखांकित करते दिखाई देते है। उनका कहना है कि आज घर, मुहल्ले और बाजार में कोई अन्तर नहीं रह गया है। अर्थात हर मुहल्ला बाजार बन गया है फिर हर मकान दुकान। फिर जाड़ों में करेला, गरमियों में फूलगोभी, मतलब सब्जियों का भी अब समय और मौसम से ताल्लुक नहीं रह गया है। सबकुछ बेढंगा-बेतरतीब —

**'जब मैं जाड़ों में करेला**
**और गरमियों में फूलगोभी बेचता हूँ**
**तो इस सदी को जी-भर कोसता हूँ**
**कि इसने सब्जियों तक को**
**उनके असली समय से अलग कर दिया है।**
**यह कैसी सदी है कि जिसमें**

**अब हर मुहल्ला बाजार है**

**और हर मकान दुकानः**

**बिकने में किसी को लाज और शरम नहीं रह गई है।'** [71]

## निष्कर्ष :

कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं का जो भुगोल रहा है उसमें से बहुत सारी कविताओं में 'असुन्दर' को कवि एक मुद्दे के रूप में जगह देते है। दूसरी भाषा में कहें तो कवि अशोक वाजपेयी का जो कविता सरोकार रहा है उनमें 'असुन्दर' भी उनका एक प्रमुख कविता सरोकार है। 'असुन्दर' से सम्बंधित उनकी कविताओं में उनकी जो दृष्टिकोण रहा है उसके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'असुन्दरता उन को असह्य है। जहा कहीं भी असुन्दरता उन्हे दिखाई पड़ता है वे बेहद दूख अनुभव करते हैं। कुलमिलाकर कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में असुन्दरता को लेकर काफी चिन्तित नजर आते है। विशेषत : इस समाज में जिन लोगों ने सुन्दरता को या सुन्दर को गाहे-अवगाहे नष्ट कर रहा है उसे लेकर कवि अधिक चिन्तित है। हालाँकि यह जो संसार है अपने आप में सुन्दर है, सुघर है। कवि अशोक वाजपेयी की 'असुन्दर' से सम्बंधित कविताओं में घुमा फिरा कर यह सवाल बार बार उठाते देखा गया है कि आखिर हम सुन्दरता को नष्ट क्यों करते है, या कि संसार को कुरूप और बेडौल क्यों बनाते है? यद्यपि कवि को इस सवाल का जो जवाब है उसकी भी जानकारी है। उन्हें पता है कि हम जीने के लिए या कहें अधिक से अधिक सुख भोगने के लिए ही ऐसा करत है ऐसा कर रहे हैं। इसके पीछे हमेशा एक ही आदमी कारण है ऐसा भी नहीं है एक तरह से पूरी तन्त्र इसके लिए जिम्मेदार है, जिसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। इसकी कोशिश कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में करते हैं। इस प्रसंग मे कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'कुँजड़ा' शीर्षक में से कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ देखा जा सकता हैं —

**'हमें जीने के लिए अपने आसपास के इतने सारे को**

**नष्ट क्यों करना पड़ता है।**

**अभी आएगा सिपाही**

**बिला हक अपना रोजीना उगाहने के लिए,**

**जैसे कभी-कभी शायद देवता आते हैं**

**बिना कुछ किए हमसे अपनी पूजा माँगने के लिए।'** [72]

कवि अशोक वाजपेयी इस सुन्दर संसार को सुन्दर परिवेश को सुन्दर बनाये रखना चाहते हैं। फिर वे अपनी कविताओं के जरिए औरों से भी अपील करते है कि इस सुन्दर संसार को सुन्दर बनाके रखे। किसी भी हालत में इसे असुन्दर, बैडौल और बेढब बनने से बचाए। क्योंकि असुन्दर अर्थात अपूर्णता वह कभी भी हमें सुन्दरता या पूर्णता प्रदान नहीं कर सकती। एक असुन्दर परिवेश में एक असुन्दर जीवन जीकर हम जीवन की सार्थकता पा नहीं सकते। अत: कवि अशोक वाजपेयी एक कवि होने के नाते अपनी कविताओं के माध्यम से इस धरती पर जहाँ भी असुन्दर दिखाई पड़ता है वहाँ पहूँचना चाहते हैं इसलिए कि उसे दूर किया जाय —

**'धरती पर जहाँ गिरते हैं शस्त्र,**
**शव और बेरहमी से काटे गये अंग-प्रन्यंग,**
**युद्ध की पताकाएँ,**
**टूटे हुए पहिये, गाड़ीवान का चाबुक,**
**भदरंग गुड़िया, अधटूटा-अधप्यासा प्याला,**
**पहाड़ी बूढ़े का कनटोप**
**और खटमलों से भरी गुदड़ी**
**वहीं, उसी के आसपास गिरते हैं शब्द :**
**जैसे अपने निरपराध और भोले माता-पिता के मारे जाने पर**
**नाराज बेटा घूरे पर फेंक देता है प्रार्थना।'** [73]

# प्रेम और प्रकृति

प्रेम और प्रकृति जिस तरह से जीवन का आधार है वैसे ही कविता का भी बाह्यिक दृष्टि से या भावनात्मक स्तर पर प्रेम और प्रकृति मानव जीवन के प्रेरणा स्त्रोत है। मानव को जीवित, सजग, सतेज, और सुन्दर बनाने में एक कारक तत्व के रूप में प्रेम और प्रकृति काम करता हैं। इसलिए कविता के लिए भी क्योंकि कविता भी मूलत : जीवन की ही अभिव्यक्ति है। अगर इसको दूसरी नजरों से देखे तो 'प्रेम' ही मूलत: 'काम' है या काम ही प्रेम है जो 'सृष्टि' का मूल कारक है। काम, प्रेम या श्रृंगार जो भी कहा जाय यह सिर्फ मनुष्य का ही नहीं प्राणी मात्र की सबसे प्रबल शक्ति का नाम है। देखा जाय तो मनुष्य के साथ-साथ प्राणी मात्र के जीवन में सबसे पहले यही भाव जिसे प्रेम, स्नेह अथवा ममता जो भी कहें इसी का बोध होता है। यह इस बात की पुष्टि है कि प्रेम ही जीवन का मूल, नैसर्गिक और आदि प्रेरक-तत्व हैं। प्रेम का स्वराज्य सिर्फ स्थूल-इन्द्रिय व्यापार तक नहीं इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में प्रेम की ही सत्ता का एकाधिकार है। कभी-कभार ऐसा भी लगता है कि 'प्रेम' से अधिक विचित्र, अदभूत, उलझावपूर्ण, रहस्यमय, महिमामय, तत्व गधुर, सम्भावनामय, सम्मोहक और सुन्दर शब्द इस दुनिया में दूसरा नहीं है। तभी तो यह सबको छू लेता हैं किसी को भी छोड़ता नहीं। इसकी परिधि किसी रेखा या विन्दु से समेटना या बाँधना सम्भव ही नहीं है। वह पता नहीं कहाँ-कहाँ चली जाती है सीमाओं की चीरते हुएँ। शायद इसीलिए कवि लेखक के लिए यह एक प्रिय शब्द है या कहें कवि-लेखक के लिए यह एक आधार शब्द है, बीज शब्द है। होगा भी क्यों नहीं आखिर कवि-लेखक चाहता क्या है ? यही न कि प्रेम को पाना चाहता है या प्रेम को छूना चाहता है अथवा प्रेम का विस्तार करना चाहता है। इस प्रसंग में आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन उद्धृत किया जा सकता है क्योंकि उनका भी कुछ ऐसा ही विचार है — 'मानव हृदय की

अत्यन्त कोमल वृत्वि का नाम प्रेम है। मानव जीवन में इसका जितना व्यापक प्रभाव है, काव्य जगत में इसका उतना हो अधिक सत्कार है। मानव ही क्यों प्राणी मात्र में इसका विशाल साम्राज्य है। हृदय स्निग्ध बनाने का यह परम उपाधेय साधन है। अत: मानव जीवन को अपने काव्य में चित्रित करनेवाले कविजन सब भूला सकते है, परन्तु प्रेम को कभी नहीं भुला सकते। प्रेम की गाथा गानेवाले कवियों की गणना कवि मण्डलियों में सबसे अधिक है। चाहे पाश्चात्य साहित्य समीक्षा की जाए अथवा प्राच्य साहित्य का अनुशीलन किया जाय प्रेम की महिमा का सर्वत्र पचुर प्रचार दृष्टिगोचर होता है।' [74] कुलमिलाकर प्रेम मानव मन को अत्यन्त सुक्ष्म एंव गूढ़ भावनाओं का व्यंजक है जैसा कि प्राच्य पाश्चात्य लगभग सभी कवि लेखक, दार्शनिक, विद्वान और चिन्तकों का भी मानना है। प्रेम का प्रयोजन केवल स्थूल इन्द्रिय व्यापार तक ही नहीं है अपितु वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त और अन्तर्निहित है। फिर कवि और लेखक क लिए जहाँ तक प्रेम अभिष्ट है वैसा ही प्रकृति भी। क्योंकि भावनात्मक स्तर से प्रेम और श्रृंगार का प्रकृति के साथ अन्योन्याश्रित संबध है। एक बड़े फलक पर देखा जाय तो जीवन में जिस तरह से प्रेम का महत्व है उसी तरह से प्रकृति का भी। 'प्रकृति' शब्द का अर्थ और (तात्पर्य) मतलब भी काफी फैला-बड़ा है। जो भी हो प्रकृति हमारा जीवन साथी है। जिस तरह से प्रेम के बिना जीवन सम्भव नहीं है उसी तरह से प्रकृति के बिना भी। एक कवि के लिए तो बात कुछ और ही होता है। कवि ही क्यों किसी भी रचनाकार के व्याक्तित्व निर्माण में प्रकृति का गुणात्मक योगदान अवश्य रहता है। स्वातंत्र्योंत्तर हिन्दी काव्य जगत के एक अनुभवी, सधी हुई प्रौढ़ कवि अशोक वाजपेयी अपनी सभी काव्य संग्रहों की ढेर सारी कविताओं में इन तत्वों का एक विषय के रूप में, सरोकार के रूप में प्रयोग किया हैं। आगे प्रेम और प्रकृति को अलग अलग करके कवि की दृष्टि और

विचारों के तहत उनकी कविताओं में जो अभिव्यक्ति हुई है उसपर विचार विश्लेषण किया जा रहा है।

**अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम :**

जीवन बोध का आदि स्त्रोत 'प्रेम' कवि, आलोचक, संस्कृतिकर्मी अशोक वाजपेयी का एक प्रिय कविता-विषय रहा है। कि उनके कवि जीवन के शुरू के दिनों से लेकर आज तक (जबकि आज वे देश भर में सब से ज्यादा उम्र दराज, प्रौढ़, बुजुर्ग और अनुभवी कवियों में से एक हैं।) उनके साथ अविच्छिन्न धारा की तरह प्रवाहमान है। इस लम्बी दौर में कहीं भी कभी भी यह धारा प्रतिहत नहीं हुए रूके नहीं। अर्थात कवि अशोक वाजपेयी का पहला काव्य-संग्रह 'शहर अव भी सम्भावना है' से लेकर अन्तिम काव्य संग्रह चिट्ठीरसा है' तक यह गति यह धारा अविराम चलती आ रही है। अर्थात अशोक वाजपेयी की सम्पूर्ण काव्ययात्रा में प्रेमानुभूति की एक अविच्छन्न धारा प्रवाहित दीख पड़ती है। अवश्य समय के साथ-साथ इस में बदलाव जरुर आया है। बदलाव तो क्या समय के साथ-साथ एक कविता सरोकार के रूप में, कवि के संवेदना के जैसा ही और विस्तार पा गया, फैल गया है। उदाहरण के रूप में कवि के पहला काव्यसंग्रह 'शहर अब भी सम्भावना है' की प्रेम कविताओं की तुलना यदि उनके परवर्ती काव्य-संग्रह की प्रेम कविताओं से की जाय तो स्पष्ट समझा जा सकता है कि विषय भाव या दृष्टि और अभिव्यक्ति की दृष्टि से किस कदर विस्तार पा गया है। स्पष्टत: इस विकास प्रक्रिया में कवि अशोक वाजपेयी की प्रेम की प्रक्रिया का परिष्कार स्थूल से सूक्ष्म ओर व्यष्टि से समष्टि की और जाता हुआ देखा जा सकता है। कवि अशोक वाजपेयी एक तरह से अपने जिद पर अड़े रहते हूँए प्रेम को शुरू से लेकर आजतक कविता विषय बनाके रखा है। उनके अनुसार प्रेम जीवन बोध का आदि स्त्रोत है। प्रेम या रति पाकृतिक है जीवन का हिस्सा है अत: यह कला या साहित्य का भी

प्रेरणा स्त्रोत रहा है इससे हमें इंकार नहीं करना चाहिए। क्योंकि साहित्य यदि जीवन के लिए है और प्रेम या श्रृंगार जबकि जीवन की मूल प्रकृति है तो साहित्य उससे पलायन कैसे कर सकता है ? जैसा कि सदियों से प्रेम महान साहित्य का विषय रहा है। साहित्य और जीवन का शाश्वत सौन्दर्य और उत्तम रहस्य प्रेम में ही निहित है। इसलिए कवि अशोक वाजपेयी 'प्रेम' को कविता का स्थायी समय कहा है। आपने जब कविता लिखना शुरू करते हैं प्रेम कविताओं का अकाल का दौर था। उस समय में प्रेम कविताएँ लिखना वह भी गहरी ऐन्द्रिकबोध से पूष्ट, एक तरह से साहसिक कदम ही नहीं, एक दु:स्साहसिक कार्य के साथ साथ तत्कालीन कविता परिदृश्य पर एक निहायत जरुरी हस्तक्षेप भी था। इसी के चलते कवि अशोक वाजपेयी को अपने समसामयिक कवि लेखक और आलोचकों के कई सवालों, टिप्पणियों यहाँ तक कि अपवादों का भी सामना करना पड़ा। जैसा कि 'कलावादी' 'देह और गेह का कवि' आदि कहते हुँए उन्हें हाशिए पर धकेलने की भी कोशिश की गई है। कुछ ऐसा ही मानना है अजीत चौधरी का भी। उनका कथन द्रष्टव्य है —'प्रेम कविता के लिए लगातार कोसे जाने वाले कवि अशोक वाजपेयी ने एक जिद के तहत पूरी जिजीविषा और रसिकता से प्रेम के स्वत्व को बरकरार रखते हुए धुआँधार प्रेम कविताएँ लिखीं। गहरी ऐन्द्रिक-बोध से सृजित प्रेम कविताओं से कविता के तत्कालीन परिदृश्य में एक निहायत जरुरी हस्तक्षेप किया सपाट-बयान होती जा रही कविता के बीहड़ों एवं उजाड़ों में ये कविताएँ मरुउद्यानों की तरह जीवन के विस्तार एवं पूर्णता में हरीनिमा बिखेरकर रंग भरती लगती हैं।

**'दु:खों और चिन्ता के कड़े समय में**
**में प्रस्तावित करता हूँ थोड़ी देर के लिए**
**सब कुछ को इस समूचे बीहड़ संसार को**
**अपनी परिक्रमा में रत इस पृथ्वि को भूलने, तजने, छोड़ने को**

**और सिर्फ उस स्पन्दन को सुनने को**

**जो परस्पर हम दोनों का है....हम खिलें**

**हम अभी काल से छीनकर**

**इन क्षणों को भरें सुगन्ध से, अभिषेक से**

**हम पर सूख की छाया हो**

**मैं इस सुख का**

**जो सिर्फ हमारा है,**

**हम ही से है,**

**हम ही तक है, प्रस्ताव करता हूँ।'** [75]

प्रेम का अर्थ अत्यन्त विरट और व्यापक है। कवि अशोक वाजपेयी इससे भलिभाँति परिचित हैं। उनकी प्रेम कविताओं में इस विराट और व्यापक रूप का भी चित्रण देखने को मिलता है। कवि अपनी इन प्रेम कविताओं में इस तथ्य पर आलोकपात करते हैं कि प्रेम ही है जिससे मनुष्य अपनी तुच्छता और होने की निस्सारता का अहसास करवाता है फिर इसी के चलते पूर्णता की ओर और प्रेम के व्यापक और मानवीय अर्थो को उपलब्धि करने का रास्ता खोलता है। तभी तो कवि जहाँ प्रेम को एक दम निजी अनुभूति मानकर व्यापक दृश्य से अलग किए जा रहे समय में प्रेम के लिए जगह की तलाश करते है, उसे बचाये रखने की कोशिश करते है। दुर्भाग्य से उनकी इन गहरे आशय को, दृष्टियों को अनदेखा किया गया है या कमतर करके देखा गया है। वे सिर्फ समय बिध्द और समय बद्ध कवि नहीं है बल्कि उन्हें कालविद्ध कवि कहा जा सकता है। इन सबका प्रतिफलन उनकी प्रेम कविताओं में भी देखा जा सकता है। कविता उनके लिए समायातीत से संवाद भी है। आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी की कविताओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रेम जीवन से अलग व्यापार नहीं है। प्रेम को व्यक्ति के अस्तित्व से सम्बद्ध मानते है कवि

अशोक वाजपेयी। प्रेम है इसलिए व्यक्ति है दोनों अभिन्न। कवि अशोक वाजपेयी की प्रेम विषयक दृष्टि कोण सम्पूर्ण आधुनिक है जिसके चलते वह अस्पष्ट, झिलमिल, छायामय,अथवा रहस्य से पूर्ण नहीं, बिल्कुल स्पष्ट, बेवाक और खोला हुआ है। और यह खोलापन उनका पहला काव्य–संग्रह की कविताओं में देखा जा सकता है। जबकि उस समय इस तरह से प्रेम के बारे में स्पष्ट और बेबाकपन से कविताओं में लाना आदर्श सहिता से, नैतिकता के विरूद्ध था। इस बारे में स्वंय कवि का कहना है — 'पहले अवैध प्रेम को कविता में लाने की हिम्मत नहीं हुई। कविता लिखना जाहिर करना था। वह सार्वजनिक स्वीकार थी जिसकी मध्यवर्गीय पारिवारिक व्यवस्था में मुहलत ही नहीं थी। वह अनुभव गोपन भले था पर केन्द्रीय था और दुर्भाग्य से उसकी कविता में अभी जगह नही थो। इसमें एक सबक था जो बाद में बहुत काम आया कई बार कविता में वह नहीं आ सकता जो आपके लिए वैसे बहुत उत्कट और प्राथमिक है।' [76]

फिर जब उनका यह विचार मजबूत हो गया तो उन्हेंने एन्द्रिकता का खोला इजहार करते हुए प्रेम कविताएँ लिखन लगा। पहला चुम्बन, प्यार करते हुए सूर्य–स्मरण, जब हम प्यार करते है, साँझ, कहा होती है दुनिया अपने शरीर से कहने दो, और सुनो आदि कविताएँ इसी सिलसिले में उल्लेखनीय हैं।

कवि अशोक वाजपेयी इस दौर को याद करते हुए कहते है 'उन्हीं दिनों अपने पहले प्रेम के आवेश में बहुत सारी ऐसी कविताएँ लिखी जिनमें एक तरह का खुलापन था। सम्बन्धों का सघन सौन्दर्य और प्रेम का खुला ऐन्द्रिक इजहार, मेरी कविता के दो बुनियादी सरोकारों ने तभी आकार लेना शुरू किया। अब सोचता हूँ तो लगता है कि उन्नीस बरस के युवक का इस तरह बेबाक होना वह भी उस छोटे से शहर के परिवेश में थोड़ा दुस्साहसी जरूर था :

— **तो जानती है क्या देती है तेरी आँखें,**

**तेरे अनावृन्त उरोज और सिहरता कनकतन।**

या कि :

— **वैसे ही जैसे तुझे रहवे दूँगा कपड़ों में**

**तब तक जब तक मेरी शरीर को**

**अपनी बासना से सुन्दर और उसुक नहीं कर लेता.....'** [77]

कवि अशोक वाजपेयी का पहला काव्य-संग्रह में प्रेम सम्बंधो कई कविताएँ है जहा ऐन्द्रिकता का खोला इजहार है उसी के साथ कुछ ऐसे भी प्रेम कविताएँ है जहा प्रेम के उच्चादर्श एंव गहनता का अत्यन्त माजित और सांकेतिक शैली में अभिव्यक्त हुई है। 'पहला चुम्बन' शीर्षक कविता एक उल्लेखनीय कविता है इस कविता में कहीं भी लगता नहीं है कि ऐन्द्रिकता का प्राचर्य है या कि शलीनता नष्ट हो रहा है —

**'एक जीवित पत्थर की दो पत्तियाँ**

**रक्ताभ, उस्तुक**

**काँपकर जुड़ गई,**

**मैंने देखा :**

**मैं फूल खिला सकता हूँ।'** [78]

'प्यार करते हुए सूर्य स्मरण' शीर्षक कविता कवि अशोक वाजपेयी की एक बहुचर्चित और विशेष उल्लेखनीय कविता है। जो उनका पहला काव्य-संग्रह में ही है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है एक युवा कवि द्वारा इस तरह से ऐन्द्रिकता का खोला इजहार अत्यन्त साहसिक कदम था। कवि का यह मानना था कि जो सच है, प्राकृतिक है, मानवीय प्रकृति है उसे क्यों छुपाया जाय? कुछ पंक्तियाँ —

**'जब मेरे होठो पर**

**तुम्हारे होठों की परछाँइयाँ झुक आती है**

**और मेरी उँगलियाँ**

**तुम्हारी उंगलियों की धूप में तपने लगती हैं**

**तब सिर्फ आँखें हैं**

**जो प्रतीक्षा करती हैं मेरे लौटने की**

**उन दिनों में, जब मैं नहीं जानता था**

**कि दो हथेलियों की बीच एक कुसुम होता है**

**— सूर्यकुसुम!'** [79]

प्रेम मे हमेशा संयोग ही संयोग नहीं होता संयोग के साथ वियोग भी होता है। यह वियोगावस्था या वियोग वर्णन ही मूलत : प्रेम कविताओं में अधिक महत्वपूर्ण साबित होता है। इस तरह का उदाहरण हिन्दी साहित्य में अनेकानेक हैं। जो भी हो कवि अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं में भी वियोग–वर्णन से सम्बन्धित कई कविताएँ हैं। अधिक नहीं तो कुछ वियोग वर्णन पूर्ण कविता ऐसी ह जो सचमूच प्राणस्पर्शी है। सचमुच ही उन कविताओं में वियोगी चित्त का वेदनासिक्त और मार्मिक दशा का चित्रण हुआ है। हालाँकि यह वियोग वस्था ज्यादातर कुछ समय के लिए ही क्यों न हो! इस दृष्टि से 'स्टेशन पर विदा' शीर्षक छोटी सी कविता कवि अशोक वाजपेयी की अत्यन्त सुन्दर कविता है —

**'तु अपना यौवन, अपनी हँसी**

**मेरे पास छोड़ गई**

**और तुझे ले गई**

**कोयले और पानी से चलती एक रेलगाड़ी।'** [80]

विदा से सम्वंधित सिर्फ तीन पंक्ति का कवि अशोक वाजपेयी की छोटी–सी कविता 'साँझ' शीर्षक स बहुत ही अच्छी कविता है। प्रेम में प्रेमिक हमेशा चाहता है कि प्रेमीका उसके सामने ही रहे जितना भी देखे मन भरता नहीं है कुछ समय के लिए भी यदि वह आड़ हो जाए देख नहीं पाए वह प्रेमिक के लिए असह्य हो जाता है। यही कुछ क्षणिक जुदाई के कारण प्रेमिक में व्याकुलता का अच्छा निदर्शन इस कविता में देखा जासकता है —

**'साँझ**
**साँऽझऽ**
**हर चेहरा विदा.....।'** [81]

प्रेम में कुछ भी सम्भव है, प्रेमिक प्रेमिका अगर चाहता है तो कहीं भी कैसे भी मिल ही जाता है। दुनिया चाहे भी तो उन्हें रोक नही पाते है। ऐसा ही मिलन दृश्य का चित्रण कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'कहा होती है दुनिया' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है —

**'कहाँ होती है दुनिया उस समय**
**जब मैं तुझे अपने सारे अंगों से थाम लेता हूँ**
**और एक तृप्ति में स्थिर कर देता हूँ**
**तेरा सोन्दर्य ?**
**जब हम सुन्दर होते हैं**
**अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन में।'** [82]

'अन्त तक' शीर्षक से कविता एक उम्दा कविता है कवि अशोक वाजपेयी की। यहाँ न पाप है, न कोई स्वार्थ है न ही अश्लीलता का कोई नामों–निशान है, न ही देह का कोई प्राधान्य। जहाँ सिर्फ प्यार ही प्यार है जो मरते–दम तक कायम है। आकुल–व्याकुल बिरही आत्मा का पुकार है जो अन्तिम क्षण तक अपनी प्रेपसी को

सिर्फ एक नजर देखने के लिए आतुर है न कोई खेद है नही कोई बदला लेने की भावना है। कवि अशोक वाजपेयी की प्रेम सम्बन्धी कविताओं में शायद सबसे उल्लेखनीय कविता है यह। इस कविता में सिर्फ भावना है न कुछ और —

**'उस क्षण तक जीने देना मुझको**
**जब मैं और वह प्रियवंदा**
**एक डूबते पोत के डेक पर**
**सहसा मिलें।**
**दो पल तक न पहचान सकें एक-दूसरे को,**
**फिर मैं पूछूँ :**
**''कहिए, आपका जीवन कैसे बीता ?''**
**''मेरा.....आपका कैसा रहा ?''**
**''मेरा.....''**
**और पोत डूब जाए।'** [83]

जैसा कि प्रेम एक विराट-व्यापक शब्द है। कवि अशोक वाजपेयी की पम संम्बधी कविताओं में भी इसका विराट-व्यापक रूप देखने को मिलता है। कवि का व्यक्तिगत प्रेम धीरे धीरे अपने संकीर्ण दायरा को लाँघते हुए वह व्यापक हो जाता है, विराट में समाहित है जाता है। यही कवि प्रेम को एक कविता सरोकार के रूप में ग्रहण करता है। प्रेम ही संसार में प्रेम के लिए जगह की तलाश करते है। कवि आखिर इस सच्चाई तक पहुँचते है कि प्रेम ही जो दुनिया को स्थिर और सुन्दर बना सकता है। ऐसे ही भावनाओं का विस्तार कवि अशोक वाजपेयी की कविता प्रेम के लिए जगह - 1 और - 2 में देखा जा सकता है। यहा उदाहरण के लिए 'प्रेम के लिए जगह-2' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तिया उद्धृत किया जा रहा है —

**'उसने देवताओं को**

**बाहर ठेल दिया**

**और पक्षियों से अनुरोध किया कि**

**उसने एक बच्चे के हाथ से एक फूल छोना**

**वे थोड़ा सा आकाश छोड़ दें**

**और एक पत्ति से थोड़ी - सी हरी निमा उधार ली**

**उसने तितली, गिलहरी और धूप के बीच**

**प्रेम के लिए जगह बनाई।'** [84]

प्रेम क्या है? इसका दायरा कहा तक फैला है इस पर भी कवि अपनी कविताओं में खोज बीन करते है। जहा तक दो व्यक्तियों के बीच जो भावनात्मक स्तर पर सम्बन्ध होता है कया वही प्रेम है या कुछ इसके बाहर भी? ऐसे ही सवालों का जवाब ढूढ़ती हुई अपनी कविता 'उसने कहा - 3 चार कविताएँ' शीर्षक में कहते है प्रेम उतना आसान मामला नही है इसमें हमेशा त्याग और बलिदान की अपेक्षा रहती है। फिर कवि सवालिया-निशान लगाते हुए कहते है कि इस तरह से बिनाश के बाद जो कुछ बचा-खुचा रहता है हरियाली में छूपे कीड़े की तरह वही प्रेम है? —

**'उसने कहा :**

**प्रेम में हम एक-दूसरे को**

**थोड़ा-थोड़ा कुतरते,**

**नष्ट करते हैं!**

**उसने कहा :**

**सारे विनाश के बाद**

**हरियाली में छुपे कीड़े की तरह**

**जो बचा रहता है**

**वही प्रेम है ?'** [85]

इसी कविता के अन्त में कवि आखिर प्रेम की परिभाषा निकाल ही लेते है। वे कहते है कि ऐसा भी हो सकता है जब हम सच से पिंड छूड़ाते है तभी हमें प्रेम मिलता है। फिर जब हमें प्रेम मिल ही जाता है तब सच की जरुरत नहीं रह जाती। यहाँ कवि मूलत : प्रेम की विशालता की रेखंकित करना चाहते है। कवि का मानना है कि सच ही प्रेम है। यहाँ गाँधीजी के विचार से कवि अशोक वाजपेयी के विचारों का तादात्म्य देखने को मिलता है —

**'हो सकता है कि सच से पिंड छुड़ाने पर ही**

**प्रेम मिलता है**

**और उसके मिलने के बाद सच की जरूरत नहीं रह जाती।'** [86]

कवि अशोक वाजपेयी कि अनुसार प्रेम उम्मीद का एक प्रकार है या उम्मीद का दूसरा नाम ही प्रेम है। प्रेम की ही जीजिविषा कहते है वह प्रेम के कारण ही सम्भव हो पाता है। प्रेम के कारण ही पृथ्वि, आकाश, वनस्पतिम यों, जल और पवन सबके प्रति हमारी नजरियाँ कुछ अलग होती है। कवि अशोक वाजपेयी अपना काव्य-संग्रह 'उम्मीद का दूसरा नाम' की भूमिका में कुछ यों कहते हैं —प्रेम प्राय : जीवन में उम्मीद का आखिरी मुकाम होता है। प्रेम अपना अनन्त रचना है, थोड़ी देर के लिए सही। वह संस्कृति, समाज और समय को अतिक्रमित करता है। वह पृथ्वि, आकाश, वनस्पतियों, जल और पवन, शब्द और स्मृतियों सबकों रूपक में बदल देता है। उम्मीद के रूपक। अन्त तक प्रेम ही सब कुछ है बिना प्रेम के जीवन का कोई अर्थ बचा ही नहीं रहता है। कुलमिलाकर प्रम ही घर है, उसी में सुख-दुख, राहत, रोटी-पानी-नमक सब कुछ है। उसी के रहते हम जीवन से उम्मीद पालते है

और आगे की और चलना शुरू करते है। 'थोड़ी देर में' शीर्षक कविता में ऐसा ही विचार व्यक्त करते है —

**'वही घर है,**
**उसी में सुख-दुख, राहत,**
**उसी में रोटी-पानी-नमक,**
**उसी के ओसारे में बैठकर**
**हम सुस्ताते हैं**
**और सोचते हैं कि चलो,**
**कल फिर आगे चलना शुरू करेंगे।'** [87]

कवि को जानकारी है कि जिस तरह से आज समाज प्रेमहीन जड़वत समाज है यहाँ प्रेम करना, प्रेम का विस्तार करना उतना आसान नहीं फिर भी वे उम्मीद लगा के बैठा है क्योंकि इसके सिवा दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। उनकी कविता 'आसान नहीं' शीर्षक में यही कहतै हैं —

**'प्रेम आसान नहीं है,**
**उसमें इतनी निराशाएँ होती रही हैं,**
**फिर भी वही एक उम्मीद है,**
**वही आग है,**
**वही लौ है,**
**वही अर्थ की दहलीज है।'** [88]

कवि इसी प्रेम की प्रतीक्षा में है क्योंकि यही जीवन है। कवि मृत्यु में भी यही प्रेम की प्रतीक्षा करता है और मृत्यु के पार भी इसी प्रेम की प्रतीक्षा करता है इस उम्मीद में कि वह जरूर आएगी। जीवन एक दिन समाप्त हो जाएगा भष्म हो जाएगा, मगर प्रेम कभी मरता नहीं है, भष्म नहीं होता है न ही उसकी प्रतीक्षा। यहाँ

कवि जीवन का अर्थ प्रेम में सार्थक समझते है। प्रेमहीन जीवन का कोई महत्व नहीं है। 'प्रतीक्षा करों -2' शीर्षक कविता में कवि यही सब कुछ कहना चाहते है —

**'प्रतिक्षा करो मृत्यु में भी उसकी**
**क्योंकि वह जीवन हैं;**
**प्रतीक्षा करो मृत्यु के पार उसकी**
**क्योंकि वह आएगी;**
**भस्म होगा सबकुछ;**
**देह, अस्थि, रक्त मास-मज्जा-**
**पर भस्म नहीं होगा प्रेम**
**भस्म नहीं होगी उसकी प्रतीक्षा!'** [89]

**अशोक वाजपेयी की कविता में प्रकृति :**

पकृति जीवन का आधार है। प्रकृति हामारा जीवन साथी है। प्रकृति-विहीन मानव जीवन की कल्पना करना प्राण-विहीन शरीर की कल्पना के समान है। अत: मानव और प्रकृति का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। क्योंकि मानव जन्म लेकर प्रकृति के गोद में ही पलते बढ़ते है अर्थात प्रकृति ही उसका पोषण करता है। एक कवि भी इसका व्यतिक्रम नहीं है। एक कवि भी पहले-पहल आँखों खोलकर अपने चारों ओर के पाकृतिक वातावरण को कौतुहल भरी नजरों से देखने लगता है। आगे भी प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों से प्रभावित होता रहता है। अपने शारीरिक और मानसिक विकास में प्रकृति का अवदान अवश्य रहता है कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'अगर जब कभो कभी में यह विचार व्यक्त करते है कि मानव को जिन्दा रहने और एक मानवीय जीवन जीने में प्रकृति मूल कारक भूमिका अदा

करता है अगर प्रकृति न रहे, प्रकृति को बचाया जाय तो मानव जीवन की कल्पना असम्भव है —

**'अगर वह तोता उस वृक्ष पर बैठकर फल न कुतर रहा होता तो इतनी देर हरियाली का वहाँ ठहरना मुश्किल था। अगर हरियाली उतनी देर ठहरी न रहती तो धूप में इतना उजास बना रहना मुश्किल था अगर उस उजास में वह बच्चा लगातार खेलता न रहता तो मुश्किल था उस पड़ोसी बूढ़ का वहाँ रमे रहना। अगर वह इतना रमा न होता तो उस बूढ़े को कब का मौत या कोई दुर्घटना उठा ले गयी होती।'** [90]

अत: धीरे धीरे व्यक्ति का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बंध बनता जाता है। एक कवि का प्रकृति से जो रागात्मक सम्बंध होता वह आम आदमी से कुछ अलग ही होता है क्योंकि कवि आम जनता से अधिक भावुक और अधिक संवेदनशील होता है। एक का प्रकृति से जो रागात्मक सम्बन्ध बनता है वह उसे सिर्फ अहसास ही नहीं कर करते वे अपने उस अनुभूति को शब्दों में अभिव्यक्त भी करते है। सच्चाई तो यह है अनेक कवि कविता लिखने की प्रेरणा प्राकृतिक परिवेश से ही ग्रहण करते हैं।

कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रकृति का जब तब प्रयोग किया है। अवश्य रीतिकालीन कवियों के जैसा हमेशा आलाम्बन और उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति का उपयोग नहीं करते हैं। वे आलम्बन और उद्दीपन के ऊपर उठकर भी कवि प्रकृति का चित्रण करते हैं। कवि आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी केवल प्रकृति के रम्य, मनमोहक और कोमल, और मधुर रूप का ही चित्रण अपनी कविताओं में नही करते हैं। वे प्रकृति के रूखे, बेडौल, रौद्र, और कठोर स्वरूप का भी अपनी कविताओं में यथा अवसर अभिव्यक्त करते हैं। कवि अशोक वाजपेयी

कविता के लिए या जीवन के लिए भी इन सबका चित्रण आवश्यक समझते है। जीवन में तथा कविता में इन सबकी भूमिका तथा महत्व है। 'आखिरी शाम की प्रार्थनाएँ' शीर्षक कविता में इसलिए चाहता है कि सिर्फ हरा-हरा पत्ता या खिला हुआ फूल नहीं झरती पत्ती का एकान्त और कुम्हलाते फूल की रात, विजड़ित सुनसान का सुर्योदय सभी कवि समय हो अर्थात कविता का सरोकार बने —

**'झरती पत्ती का एकान्त**
**कुम्हलाते फूल की रात**
**यहाँ के विजड़ित सुनसान का सूर्योदय**
**ऐसी सम्भावना दो कि**
**यह सभी कवि समय हों।'** [91]

प्रकृति के व्यापक परिवेश-पेड़-पौधे, झीले, नदियाँ, मैदान, पठार, सूर्य चन्द्र पर्वत मरुस्थल, समुद्र, पठार, घाटियाँ, झरने, नभ, मेघ, वन उपवन, वनस्पतियाँ, खेत-खलिहान, पशु-पक्षी, वर्षा, पवन, आँधियाँ, धूप, चाँदनी, अँधेरा, ऋतुएँ, आकाश-गंगा, नक्षत्र, इन्द्रधनुष, संध्या, उषा, दोपहर, रात्रि और शाम आदि सब विषय और माध्यम के रूप में अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करते हैं। प्रकृति का मानवीकरण के रूप में चित्रण भी कवि अपनी कविताओं में भरपूर करते है। सूक्ष्म दृष्टि के अध्येता कवि कभी-कभार प्रकृति के रहस्यमय रूप को भी निहारते है और उसे अपनी कविताओं में आख्यायित करते है।

कवि अशोक वाजपेयी के प्रकृति-प्रेम की गहराई का अनुमान हम उन सब कविताओं में देख सकते है जिसमें कवि अपने बचपन के घर को याद करते हैं जिस घर के सामने कठचन्दन और बकौली के पेड़ था जहा हर सुबह मौलश्री झरते थे।

जहाँ पक्षी कुछ देर के लिए ठह आता है। 'सामने' शीर्षक कविता में इस तरह कवि अशोक वाजपेयी उस घर को याद करते हैं —

**'बचपन के घर के सामने कठचन्दन था**
**मौलश्री थी:**
**कड़ी धूप में हम शहर घूमते थे**
**और ठण्ड की रात में गरम दूध में**
**ताजी रोटी मसलकर खाते थे।**
**बचपन कभी नाना की जेब से पुस्तकों के लिए**
**चुराये गये सिक्कों में खनकता था**
**कभी नहानघर के कुएँ में ऊपर तकभर आये पानी की तरह उसे**
**छूह सकते थे।'** [92]

कवि अपने उस पुराने घर की यादों को अपनी 'जंगल' शीर्षक गद्य कविता में भी दोहराते है। वह घर जो शहर में होते हुए पास में जंगल था। जिस जंगल में बहुत सारे पक्षी आते थे कभी-कभार कवि के घर की छत पर या उसकी मुँडेरों पर आते थे सुस्ताते थे। कुल मिलाकर वह दृश्य बहुत खुबसूरत था, सुन्दर था। आज न वह घर है न ही वह जंगल जिसे खोते हुए कवि को बेहद दुख होता है। इस दुखके पीछे कवि के प्रकृति से जो भावनात्मक सम्बंध है प्रमाणित हो जाता है। कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ पेश हैं—

**'घर हमारा शहर में था और फिर भी घर के पास जंगल था। यों**
**शहर और जंगल, बेमेल थे, शायद एक दूसरे के विरुद्ध भी। पर**
**थे और हमारा घर उनके पास था**
**शहर में था जंगल के पास था**
**बहुत सारे पक्षीआते थे जंगल से और बहुत सारी आवाजे**

**घर की छत या उसकी मुँ जेरों**

**पर सुस्ताते थे बिना किसी**

**बैरके शहर और जंगल हमारे धर**

**मिलते थे।'** [93]

पेड़-पौधे से भरा घना जंगल जहा का सुनसान वातावरन तथा नीरवता कवि अशोक वाजपेयी को बहुत अच्छा लगता है। झरने के पास बैठकर झरने को मधुर आवाज सुनने का, उसका आनन्द लेने का कवि की इच्छा है। फिर एक भावुक कवि प्रकृति के इस तरह का पल्लवों-पूष्पों की प्रार्थनाएँ भी सुनना चाहते है। 'हम' शीर्षक कविता में कवि इसी आकांक्षाओं को साकार करते दिखाई देते है। कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'हम जंगल के सुनसान को भंग किए बिना**

**झरे के पास बैठकर**

**सुनेंगे पक्षियों-पल्लवों-पुष्पों की प्रार्थनाएँ'।** [94]

भागमभाग तथ्य भागदौर की जिन्दगी में मनुष्य ही नहीं प्रकृति के अन्य प्राणी भी शामिल हैं जैसा कि कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'भागमभाग' शीर्षक में लक्ष्य करते है। किस तरह से एक दाना लेकर चीटी भाग रही है। चिड़िया अपनी चोचे में तिनका दबाए जा रही है। कवि अभिभूत होते है यह देखकर हरियाली किस तरह पेड़ की शिराओं से होकर दौड़ते है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं —

**'एक दाना लेकर भाग रही है चींटी**

**एक तिनका अपनी चोंच में दबाए**

**पछियाती है एक पीली चिड़िया,**

**पेड़ की शिराओं के रास्ते**

**पत्तियों की नोक तक दौड़ रही है**

**हरियाली। तितलियों के पंरपों से लिपटकर**

**उड़ रहा है मकरन्द।'** [95]

'सावन का दूसरा दिन' शीर्षक कविता प्राकृतिक दृश्य का यथार्थ चित्रण की दृष्टि से कवि अशोक वाजपेयी की एक अच्छी कविता है। सावन का महिना आमतौर पर बारिश का महिना होता है। कवि सावन में जो पानी गिरता है उसी के चलते प्रकृति में बदलाव होता है उन सबका यथावत वर्णन कवि इस छोटी-सी कविता करते हैं। बारिश और पानी के कारण घर आँगन तथा हमारे आस-पास का माहौल में किस तरह का परिवर्तन होता है इस कविता में देखा जा सकता है —

**'सिर्फ पानी ही नहीं है**

**मौलश्री है**

**पुलककर झरता हुआ है फूल**

**घरः काई-रचा है**

**कठचन्दन : हरा है**

**सड़कः गीली-काली है**

**धुँधला आकाशः घिरा-घिरा है**

**सिर्फ पानी ही नहीं है।'** [96]

कवि अशोक वाजपेयी एक नीरव दर्शक जैसा हमेशा प्रकृति के रूप छटाओं का दर्शन मात्र नहीं करते हैं वे प्रकृति को कभी-कभी जासूसी नजरों से भी देखते हैं। कवि अपने अन्दर के भावों और आवेगों को कभी कभी प्रकृति के उपादानों के साथ तुलना करते हैं और उसके माध्यम से उन सबका इजहार भी करते है ऐसे ही एक कविता है 'देखा है!' शीर्षक से कवि की। इस कविता में कवि अपने वेदना-गधूर मन की अभिव्यक्ति बादलों के जरिए करता हैं —

**'तुमने वह बादल देखा है**

**जो नीलेपन के टुकड़े पर**

**अभी उभरकर**

**एक दाग-सा मिटता-मिटता चला गया है**

**तुमने वह बादल देखा है ?**

**पहचाने है रंग ?**

**भार अनुमाना उसका ?'** [97]

यह जो दुनिया है जिसका एक बड़ा अंश प्रकृति का है। मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति प्रत्येक चीजों की जो अपनी-अपनी है वह छोटी सी है जो आज है। कल नहीं है। कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता। छोटी सी दुनिया में यही सब कहते हैं कि यह छोटी सी दुनिया हमें मिलि है सच है, सुन्दर है और असह्य भी है। बड़ी बात तो यह है यह दुनिया कुछ ही दिनों की है मनुष्य के साथ साथ गिलहरी, तितलियों, मधुमक्षियों, तोतों, और बगुलों सबकी। इसे हमें भूलना नहीं चाहिए —

**'अपने बगल में टुकुर-टुकुर ताकती गिलहरी से**

**कहा फूल ने —**

**एक बुढ़िया अपनी गुदड़ी से निकालकर**

**एक तोता खाया फल**

**अपनी नातीन को देते हुए**

**यही बोली**

**छोटी सा है तितलियों और मधुम किखयों की दुनिया,**

**छोटी है दुनिया तोतों और बगुलों की,**

**आम और अमरूद की, इमलियों और बेरों की।'** [98]

'नर्तकी' शीर्षक कविता में कवि अशोक वाजपेयी नर्तकी के मुद्राओं की तुलना प्राकृतिक दृश्य से करता है। जो अन्यन्त सुन्दर तथा आकर्षणीय है। एक साथ नत्य कला और प्राकृतिक सुषमाओं उत्कृष्ट नमुना है। इस कविता को पढ़ते हुए सिर्फ पढ़ना नहीं मानों वह दृश्य यथा रूप में आँखों के सामने दिखाई देते है। नर्तकी की तुलना फूलों-भरी डाल से की गई है जब वह झुकती है मानों बहते पानी से बातें करती है फिर हवा के झोंके से डालकर वापस स्थिर हो जाती है कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

**'फूलों-भरी डाल झुककर**
**जैसे बहते पानी से बतियाती है**
**और फिर हवा के झोंके में डालकर**
**वापस हो जाती है स्थिर।'** [99]

कवि सुबह का सुन्दर वातावरण का चित्रण अपनी कविता 'गूँजती हुई सुबह' शीर्षक में खुबसूरती के साथ करते है। ओसाभोंगी वृक्ष की पत्तियाँ झिलमिलाती हैं जिससे हरापन गूंजता है। रात के अंधेरे को भेदते हुए पूर्व आकाश अरुणाभ गूँजने लगता है। कुनमुनाते बच्चे और हरियाली गूंजते लगता हैं —

**'वृक्षों की झिलमिल पत्तियों में**
**गूँजता है हरापन**
**पूरब के आकाश में**
**धीरे-धीरे उठती है**
**एक अरुणाभ गूँज**
**धरती के सपने में**
**गूँजते हैं दूध**
**गुँजते है कुनमुनाते बच्चे**
**गूँजती है ओस-भीगी हरियाली'** [100]

सूर्योदय का मनोरम दृश्य का चित्रण कवि कई कविताओं करते हैं। सूर्योदय का समय उस समय का सुनहला वातावरण सचमुच सबको अच्छा लगता है। कवि लोगों की नजरों में तो यह दृश्य और सुन्दर लगता है साथ ही यह दृष्टि कवि के मनोजगत को भी भावनात्मक रूप से भी आन्दोलित करते है। ऐसी ही एक कविता कवि अशोक वाजपेयी की 'सूर्य' शीर्षक से है। कवि का कहना है कि सिर्फ मनुष्य ही सूर्योदय का नजारा नहीं देखते है अन्य प्राणी तथा फूल भी इस दृश्य को उपभोग करते है —

**'चम्पे के फूल मुँह उठाए**
**देखते हैं सूर्य की ओर,**
**तार पर बैठी एक चिड़िया**
**ताकती है सूर्योदय,**
**जाड़े में सरदी से कुकुड़ता**
**एक बच्चा उम्मीद से**
**बैठता है धूप में।'** [101]

प्रेम और प्रकृति का अटूट सम्बंध होता है। प्रेम-बोध या प्रेम-भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति देते है कवि। ऐसे ही भावनाओं की अभिव्यक्ति देखने की मिलता है कवि अशोक वाजपेयी की कविता 'अनुपस्थिति का नाम' शीर्षक में। इस कविता में कवि प्रकृति के एक एक घटक को एक एक तत्वों को किसी की अनुपस्थिति का नाम देना चाहते है। अर्थात जो अनुपस्थित है उसकी उपस्थिति का अहसास कवि को प्रकृति के कन-कन में होता है। यह अनुपस्थिति प्रेमीका का हो सकता है, किसी आत्मीय का हो सकता है, अथवा ईश्वर की भी अनुपस्थिति हो सकता है। इस अनुपस्थिति से कवि कहीं न कहीं मर्माहत है और

इसी वेदना को पीड़ा को कवि प्रकृति के माध्यम से अहसास करने के साथ-साथ अभिव्यक्त भी करते हैं। कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ उद्धर किया जा हैं —

**'यह खिली हुई चटख धूप,**
**यह ठंडक, यह ठंडाती हवा,**
**यह धूप में गरमाते बैठ कबुतरों का जोड़ा,**
**यह दूर हरे पेड़ की असंख्य पक्तियों का चमकना-काँपना,**
**यह सड़क पर आवाजों का लगातार चलता हुजूम,**
**यह मुझ पर बार-बार घिरता विषाद,**
**यह डरावना-सा लगता बढ़ता हुआ सुनसान,**
**यह स्थगित हो गया समय,**
**यह ऊपर खिड़कियों पर लटके गमलों में फूलों की प्रसन्न लापरवाही:**
**इस सबको तुम्हारी अनुपस्थिति का नाम देता हूँ।'** [102]

उद्दीपन के रूप में भी कवि अशोक वाजपेयी प्रकृति का अपनी कविताओं में प्रयोग करते है। जहाँ पेड़-पौधे, फूल, बादल, और चाँदनी आदि कवि के भावनाओं को जगाता है उद्दीत्प करता है। विशेषत: कवि को प्रेम-सम्बंधी कविताओं में इन सबका अधिक प्रयोग देखने को मिलता है। यहा एक उदाहरण लिया जा रहा है कविता का शीर्षक है 'कहा १ -1' कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा हैं —

**'दहकता गुलमोहर का फूल**
**कहाँ जानता है**
**कि उसने लगा दी है आग**
**हरियाली में !'** [103]

'प्रकृति' कवि अशोक वाजपेयी के भावों की अभिव्यक्ति केस्ते जब जैसा प्रयोजन लगता है वे उसी रूप में उसका उपयोग करते है 'यदि वे बोल पाते' : चार कविताएँ शीर्षक के अन्तर्गत 'पत्तों का अकथ' कविता में पत्तों को मूर्त रूप प्रदान करते हुए पत्तों के माध्यम से कवि जन्म : मृत्यु जैसे गम्भीर और दार्शनिक भाव सम्पन्न विषय पर अपना सोच और विचार को अभिव्यक्ति देते है। पत्तों को भी कोई क्था हो सकती है या पत्ते भी सोचते है आदि पर हम कभी गौर नहीं करते है कवि अशोक वाजपेयी इस कविता में इसी ओर दृष्टि आकर्षण करता है कि पत्तों की भी कथा है जो वह किसी से कभी नहीं कहते है क्योंकि कोई उसकी बातों को सुनते नहीं है। फूल, वृक्ष, पक्षियों, हवा, धरती आकाश किसी को भी सुनाई नहीं देती है। और इसी तरह से बिना कहे एक दिन वह गिर जाते है और उसके जगह दूसरे पत्ते उगंते हैं —

**'हम किसी से नहीं कहते**
**न फूलों से, न वृक्ष से, न पक्षियों से-**
**हवा को नही बताते,**
**आकाश को सुनाई नहीं दे सकती,**
**धरती को फुरर्सत नहीं सुनने की**
**पर हमारी भी कथा है :**

× × × ×

**एक पत्ते का गिरते हुए**
**दूसरे उगते हुए पत्ते में चुपचाप अनदेखे**
**बदल जाने था का रहस्य है।'** [104]

प्रकृति का मानवीकरण करते हुए कवि अशोक वाजपेयी अपनी कविता 'वही जाऊँगा' शीर्षक में प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे चटटान, वृक्ष, पक्षियों,

नदी–जल, आदि के विलाप सिसकियाँ और व्याथा को सुनना चाहते हैं। प्रस्तुत कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

**'मैं वहीं जाऊँगा**
**जहाँ निशीथ के एकांत अन्धकार में**
**चट्टाने विलाप करती है;**
**जहाँ वृक्ष अपनी हरीतिमा के आच्छादनों के पार सिसकते है;**
**जहाँ पक्षियों की डार यकायक युप ही जाती है**
**अब उसे पता चलता है कि उनमें से एक**
**हमेशा के लिए पीछे छूट गया।'** [105]

कवि अशोक वाजपेयी प्रकृति के एक एक तत्वों को लेकर अपनी दृष्टि और कल्पना के सहारे अलग अलग कविता लिखते हैं। जहाँ कवि प्रकृति के एक एक तत्व को लेकर तरह–तरह की कल्पना करते है। कभी उसके सुषमाओं का वर्णन करते है कभी उसे मूर्त रूप में साकार करते है और रहस्य से भरा कई सवालों और तत्थ्यों से उसे जोड़ते है। ऐसे ही एक कविता है —'जल ने कहा : 1' शीर्षक से इस कविता मे कवि जल को मूर्त रूप प्रदान करते हुए यह दिखाते है कि जल सिफ बहता ही नहीं है सोचता भी है कभी वह हँसता है कभी रोते है, कभी रूठ जाता है और बिफरता है। फिर अकसर गुमसुम उदास रहता है लेकिन वह हमेशा होने से प्यार करता है। अर्थात कवि जल का हर–एक रूप का चित्रण इस कविता में करते है —

**'मैं बहता तो हूँ**
**लेकिन कभी–कभी हँसता या रोता भी हूँ**
**कभी रूठ जाता हूँ**
**बिफरता हूँ**

**जब-तब गुम सुम उदाास हो जाता हूँ**

**मैं होने से प्यार करता हूँ।'** [106]

कवि अशोक वाजपेयी सिर्फ प्रकृति के रम्य या मनमोहक झाँकी को देखनवाले और आनन्द लेनेवाले कवि नहीं है। कवि अपनी भावों को व्यक्त करने के लिए जब-तब प्रकृति के कठोर और भयानक रूप का वर्णन भी करते हैं। अर्थात इन कविताओं में प्रकृति मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम भर है। इस कविता में कवि अपने किसी आकांक्षित को दूँढ़ रहा है लेकिन वह मिल नहीं रहा है और इसी खोज में वे न जाने कहाँ-कहाँ घूम आते हैं —

**'तपती हुई रेत है**

**दहाड़ मारता हुआ समुद्र है**

**पत्ती होने के पहले ठिठका हुआ किसलय है**

**ऊँचे चढ़ता जाता पर्वत है**

**नीचे बहती जाती नही है**

**बादलों के पीछे छिप गया आकाश है**

**वही नहीं है।'** [107]

'फिर प्रतीक्षा' शीर्षक कविता में कवि अशोक वाजपेयी प्रकृति के निरस उदासीन स्वरूप का चित्रण करते है। क्योंकि कवि इस कविता में मृत्यु-संवेदनाओं से जुड़कर प्रकृति को देखते है। जहाँ चम्पा का आखिरी फूल यह अहसास दिलाता है कि उसका समय खत्म होनेवाली है। वह पीली चिड़िया यहाँ अब नहीं है जो कल तक फुदक रही थी। अमलतास खिला हुआ तो है मगर उसमें न कोई उल्लास है न उमंग सिर्फ खिला हुआ है। जैसा कि नीला आकाश फैला हुआ है उदासीन। कुछ पंक्तियाँ —

**'चम्पा में फिर आखिरी फूल आ गये हैं,**

**कहीं और बसेरा पाकर या**

**अपने अन्त की ओर चली गयी है वह पीली चिड़िया**

**जो कल तक यहाँ फुदक रही थी।**

**बेपरवाह खिला है पड़ोस का अमलतास,**

**उदासीन फैला है नीला आकाश।'** [108]

दरअसल प्रकृति एक अबुझ पहेली है। जो किसी के लिए कुछ और किसी के लिए और कुछ। फिर कवियों की दृष्टि कुछ अगल ही होते हैं। कवि प्रकृति को विभिन्न नजरों से देखते है और अपने मनचाहे अनुभवो के साथ उसका रिश्ता कायम करते है जिस ओर अक्सर आम जनता कभी ध्यान ही नहीं देते है। फिर कवि प्रकृति को लेकर वे सब कल्पना करते है जिसे देखते हुए बस इतना भर कहा जाता है कि सचमुच ऐसा भी हो तो सकता है! कवि अशोक वाजपेयी की कई ऐसी कविताएँ हैं जहाँ कवि प्रकृति के रहस्यमयी रूप को कल्पना के सहारे बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत करते हैं। ऐसे ही एक कविता है कवि अशोक वाजपेयी की जिसका शीर्षक है —'तुम कदाचित न भी जानों'। इस कविता में कवि प्रकृति के विविध उपादानों के जो अपना-अपना स्वभाव और धर्म है उसे देखते हुए कहते हैं कि हो सकता है कि यह सब करते हुए वह अपने लिए घर बना रहा है —

**'पत्तियों के हरे रसायन में**

**जो छन्द नीरव गूँजता है,**

**दूर्वाचल में जो आलोक**

**ऐसे फैल जाता है जसे अँधेरा,**

**सागर में अहरह गान में**

**जो मूर्त होता है**

**लहरों का बनता-मितता देवता,**

**तुम कदाचित् न भी जानो**

**वे सभी एक घर बनाते हैं**

**शब्दों का,**

**कविता का,**

**अज्ञेय का।'** [109]

कवि अशोक वाजपेयी प्रकृति को लेकर, प्रकृति को देखकर आश्यर्य भी होते है कि यह आसमान, हवा, चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वि, पहाड़, और नदियाँ आखिर है क्या? इसी के चलते अन्त तक मनुष्य के बारे में भी यही सवाल उठाते है। और यही सोचते है सबके सब तमाशा है। फिर इस तनाशे के केन्द्र में मनुष्य है और उसी के इर्दगिर्द बाकी सब तमाशा है जैसे - चन्द्र, सूर्य, आसमान, हवा आदि। कवि को कविता 'तमाशा मेरे आगे' शीर्षक कविता की पक्तियाँ उद्धृत किया जा रहा है —

**'तमाशा,**

**यह आसमान और हवा,**

**चंन्द्रमा और सूर्य,**

**पृथ्वी और उसे घेरे पहाड़ और नदियाँ**

**अगर तमाशा हैं**

**तो हम क्या हैं ?**

**तमाशे बीच तमाशा ?**

**या कि तमाशा है ही इससे कि हम तमाशाई हैं**

**हम न हों तो यह तमाशा भी न हो ?'** [110]

कवि अशोक वाजपेयी प्रकृति का उपयोग अपनी अनेक कविताओं में जब-तब और जैसे-तैसे करते है। मतलब हर एक रूप मे विभिन्न दृष्टियों से वे प्रकृति

का चित्रण अपनी कविताओं में करते हैं। इस दृष्टि से उनकी उल्लेखनीय कविताएँ हैं — एक छोटा शहर, आओगी, उत्तरराग, वृक्ष, वृक्ष वह, तोतों से बची पृथ्वी, इस पृथ्वी को, पृथ्वी के रहस्य, प्रेम के रूपक, सिर्फ फूल जानते है, केलि, प्रणय-निवेदन, एक फूल की याद, वह पत्ती, चिड़िया, आएँगी, पत्थर, खयाल ही नहीं, घास, जल, पूर्णिमा, कहा २, खजुराहों में रात, अब मैं आकाश को पुकार ता हूँ, रिवाज नहीं रहा, प्रार्थना में नहीं प्रेम में, समय नहीं हम, जब कुछ भी नहीं, पाँच कविताएँ, उसकी इबारत, पुकारना, कहता हूँ, वही तो नहीं रहने देगा, वापसी, अकस्मात - 1, आदि।

## सन्दर्भ :


1. कोलॉज - सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 52
2. निरज का काव्य एक विश्लेषण - डॉ दुर्गाशंकर मिश्र, 1985 पृ. 119
3. आलोचना की छबियाँ - ज्योतिष जोशी, 1996 पृ. 16
4. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ - सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 184
5. पूर्ववत् - पृ. 110,111
6. पूर्ववत् - पृ. 198
7. पूर्ववत् - पृ. 172
8. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज - अशोक वाजपेयी, 2003 पृ. 162
9. इबारत से गिरि मात्राएँ - अशोक वाजपेयी, पृ. 143
10. कला विमर्श सम्पादक हेमन्त शेष नैशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली, 2001 पृ. 59
11. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 44
12. तिनका-तिनका भाग- 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 78

13. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 79
14. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादप : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 45
15. पूर्ववत् – पृ. 51
16. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ, सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 38
17. मरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयो–सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ. 36
18. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 20
19. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 80
20. पूर्ववत् – पृ. 403
21. पूर्ववत् – पृ. 237
22. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 198
23. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 187
24. समय से बाहर, अशोक वाजपेयी, 1994 पृ. 143
25. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 14
26. पूर्ववत् – पृ. 20
27. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 184
28. मेरे साक्षात्कार अशोक वाजपेयी –अरविंद त्रिपाठी, भूमिका
29. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 346
30. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी–सम्पादक :अरविन्द त्रिपाठी,1998 पृ. 12
31. पूर्ववत् – पृ. 20
32. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 14
33. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 83
34. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी –सम्पादक: अरविन्द त्रिपाठी,1998पृ.10,11
35. कोलॉज – सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल, पृ. 129

36. विषयान्तर, मदन सोनी, 1995 पृ. 162
37. कोलॉज – सम्पादक : पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 136
38. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 131
39. पूर्ववत् – पृ. 142
40. पूर्ववत् – पृ. 68
41. तरुण काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, डॉ रामकुमार शर्मा, 1993 भूमिका
42. निरज का काव्य एक विश्लेषण – डॉ दुर्गाशंकर मिश्र, 1985 पृ. 119
43. आज की कविता, विनय विश्वास, प्र.सं. 2009 पृ. 39
44. उम्मीद का दूसरा नाम, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 81
45. तरुण काव्य में प्रेम और सौन्दर्य, डॉ रामकुमार शर्मा, 1993 पृ. 143
46. उम्मीद का दूसरा नाम – अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 16
47. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीशे पचौरी, 1999 पृ. 310
48. उम्मीद का दूसरा नाम, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 39
49. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 212
50. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 20
51. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 37
52. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 49,50
53. कुछ रफु कुछ थिगड़े – अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 18
54. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 232
55. अशोक वनाम वाजपेयी – डॉ धर्मवीर, 2004 पृ. 17
56. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 87
57. पूर्ववत् – पृ. 401
58. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 255

59. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 52
60. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 249
61. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 25
62. मेर साक्षात्कार अशोक वाजपेयी–सम्पादक : अरविन्द त्रिपाठी, 1998 पृ. 38
63. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज – अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 23
64. कुछ रफु कुछ थिगड़े – अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 14
65. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 58
66. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 41
67. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 17
68. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 18
69. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 148
70. पूर्ववत् – पृ. 221
71. समय के पास समय, अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 29
72. पूर्ववत् – पृ. 30
73. इबारत से गिरि मात्राएँ, अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 19
74. निरज का काव्य एक विश्लेषण – डॉ दुर्गाशंकर मिश्र, 1985 पृ. 142
75. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ – सम्पादक : सुधीश पचौरी, 1999 पृ. 308
76. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 19
77. पावभर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी 2003 पृ. 24
78. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 42
79. पूर्ववत् – पृ. 43
80. पूर्ववत् – पृ. 50
81. पूर्ववत् – पृ. 51

82. पूर्ववत् – पृ. 55

83. पूर्ववत् – पृ. 60

84. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 285

85. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 115

86. पूर्ववत् – पृ. 117

87. पूर्ववत् – पृ. 35

88. उम्मीद का दूसरा नाम, अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 32

89. पूर्ववत् – पृ. 30

90. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 335

91. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 249

92. इबारत से गिरि मात्राएँ – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 25

93. तिनका–तिनका भाग– 2 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 157

94. पूर्ववत् – पृ. 25

95. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 207

96. पूर्ववत् – पृ. 270

97. पूर्ववत् – पृ. 288

98. पूर्ववत् – पृ. 293

99. तिनका–तिनका भाग– 1 - अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 340

100. पूर्ववत् – पृ. 345

101. पूर्ववत् – पृ. 346

102. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 125

103. तिनका–तिनका भाग– 1, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 394

104. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 24

105. पूर्ववत् – पृ. 42

106. कुछ रफ़ु कुछ थिगड़े – अशोक वाजपेयी, 2004 पृ. 53

107. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 124

108. तिनका–तिनका भाग– 2, अशोक वाजपेयी, 1996 पृ. 341

109. दुख चिट्ठीरसा है – अशोक वाजपेयी, 2008 पृ. 92

110. समय के पास समय – अशोक वाजपेयी, 2000 पृ. 29